॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

८१

श्रीकेदारभट्टविरचितः

वृत्तरत्नाकरः

'चन्द्रिका'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतः

व्याख्याकारः

आचार्य बलदेव उपाध्याय

भूमिकालेखकः

डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

परीक्षापयोगी प्रश्नोत्तरात्मक पुस्तकें

(संस्कृत भाषा में)

अभिधावृत्तिमातृका-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
अलङ्कारशास्त्रस्येतिहासः । परमेश्वरदीन पाण्डेय
उत्तररामचरितादर्श । डॉ. रमाशंकर मिश्र
कर्पूरमंजरी-दीपिका । गौरीनाथ मिश्र 'भास्कर'
कादम्बरी-कला-प्रकाशः । डॉ. नरेश झा
कादम्बरी-सोपानम् । शिवप्रसाद द्विवेदी
काव्यप्रकाश-रहस्यम् । श्रीरामजीलाल शर्मा
काव्यमीमांसा-दीपिका । वेदव्यास शुक्ल (१-५ अध्याय)
काव्यशास्त्रस्येतिहास-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तेः-आलोकः । (तृतीयाधिकरण प्रश्नोत्तरी) । डॉ. नरेश झा
किरातार्जुनीय-रहस्यम् । डॉ. कृष्णदेव प्रसाद । १-२ सर्ग, ३-६ सर्ग
कुमारसम्भवम्-रहस्यम् । श्री रामप्रसाद त्रिपाठी । १-२ सर्ग
कुवलयानन्दालोकः । डॉ. नरेश झा
चन्द्रकलानाटिका-रहस्यम् । परमेश्वरदीन पाण्डेय
चन्द्रालोक-रहस्यम् । मानवल्ली तथा बेताल
चम्पूरामायण सोपानम् । डॉ शिवप्रसाद द्विवेदी
तर्कभाषा-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
तर्कसंग्रह-रहस्यम् । श्रीकीर्त्यानन्द झा
दशकुमारचरित-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
ध्वन्यालोक-प्रकाशिका । श्री राजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी
नलचम्पू-रहस्यम् । पं. परमेश्वरदीन पाण्डेय
नाटयशास्त्र-प्रश्नोत्तरी । १-७ अध्याय; १७-२० अध्याय
नैषधीयचरित-प्रश्नोत्तरी । मिश्र एवं द्विवेदी । १-५ सर्ग; १०-१३ सर्ग
परमलघुमञ्जूषा-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
परिभाषेन्दुशेखर-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
पाणिनीयशिक्षा-सोपानम् । डॉ. बालगोविन्द झा
प्रतिमानाटक-रहस्यम् । डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी
प्रबन्धसङ्ग्रहः (व्याकरणाचार्य निबन्ध) । डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
भट्टिकाव्य-दर्पणः । स्वामी प्रज्ञान भिक्षु । १-४ सर्ग, ५-८ सर्ग
भट्टिकाव्यालोकः । डॉ. रमाशङ्कर मिश्र । १४-१७ सर्ग, १८-२२ सर्ग
भारतीयसंस्कृति-सोपानम् । आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी
मध्यसिद्धान्तकौमुदी-चन्द्रिका । आचार्य विजयमित्रशास्त्री (१-४ खण्ड) सम्पूर्ण

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

८१

श्रीकेदारभट्टविरचितः

वृत्तरत्नाकरः

'चन्द्रिका'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतः

व्याख्याकार—

आचार्य बलदेव उपाध्याय

भूमिकालेखक—

डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002



चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007



चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

THE

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA

81



VṚTTARATNĀKARA

OF

ŚRĪ KEDĀRA BHAṬṬA

Edited with

'Chandrikā' Sanskrit & Hindi Commentaries

By

Acharya Baldev Upadhyay

Introduction by

Dr. Brahmanand Tripathi



CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

VARANASI

Publishers :

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
(Oriental Publishers & Distributors)
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001

Also can be had from :

CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor
Gali No. 21-A, Ansari Road
Daryaganj, New Delhi 110002

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind to Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001

भूमिका

छन्द का ही पर्याय वृत्त है। यह ग्रन्थ वृत्त रूपी रत्नों का आकर, खान या खजाना है, जिसमें मात्रिक, समवर्णिक, विषमवर्णिक, अनेक प्रकार के वृत्तरत्न भरे हैं। अन्त में प्रस्तार विधि से उनको फैलाने की विधि का वर्णन किया गया है।

मूलरूप से 'छन्द' शब्द से वेद का ग्रहण होता है। लौकिक छन्दों का अवतार या आविष्कार महर्षि वाल्मीकि के मुख से सहसा करुण रस के रूप में उद्भूत प्रथम पद्य था, जिसके सम्बन्ध में कहा गया था—

'नूतनश्छन्दसामवतारः' वह पद्य इस प्रकार है—

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥'

छन्दःशास्त्र के परिचायक नाम हैं—छन्दोविचिति, छन्दोऽनुशासन, छन्दोविवृति तथा छन्दोमान, पाणिनीय शिक्षा में इसके महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है—'छन्दः पादौ तु वेदस्य'—वेद का चरणस्थानीय छन्दःशास्त्र है, इसके अभाव में वह पंगु हो जाता है, अथवा उसके अध्येता का ज्ञान लड़खड़ाने लगता है। वेद में प्रमुख रूप से सात छन्दों का प्रयोग मिलता है। इसकी तुलना में लौकिक साहित्य में छन्दों की संख्या की भरमार है।

रामानुजाचार्य के गुरु श्री आचार्य यादव प्रकाश ने पिंगलसूत्र की समाप्ति पर छन्दों की परम्परा का परिचायक एक पद्य इस प्रकार उद्धृत किया है—

'छन्दोज्ञानमिदं भवाद्भगवतो लेभे गुरूणां गुरुस्-
तस्माद् दुश्च्यवनस्ततोऽसुरगुरुर्माण्डव्यनामा ततः।
माण्डव्यादपि सैतवस्तत ऋषिर्यास्कस्ततः पिङ्गल-
स्तस्येदं यशसा गुरोर्भुवि धृतं प्राप्यास्मदाद्यैः क्रमात् ॥

युधिष्ठिरमीमांसक द्वारा रचित 'वैदिकच्छन्दो मीमांसा' के अनुसार छन्दों के अवतरण का क्रम निम्ननिर्दिष्ट है—

छन्दःशास्त्रमिदं पुरा त्रिनयनाल्लेभे गुहोऽनादित-
स्तस्मात् प्राप सनत्कुमारकमुनिस्तस्मात् सुराणां गुरुः ।
तस्माद् देवपतिस्ततः फणिपतिस्तस्माच्च सत्पिङ्गल-
स्तच्छिष्यैर्बहुभिर्महात्मभिरथो मह्यां प्रतिष्ठापितम् ।।

सम्प्रति उपलब्ध छन्दोग्रन्थों में आचार्य पिंगलकृत **'छन्दःसूत्र'** सर्वप्राचीन है। इसकी मौलिकता को देख अनेक प्राचीन तथा नवीन विद्वानों ने इस पर टीकाएँ लिखीं। टीका लेखन जहाँ एक ओर विषय को सरल करने का प्रयास कहा जा सकता है, वहाँ दूसरी ओर यह ग्रन्थकार की सादर उपासना भी है। इसके अनन्तर जो भी छन्दोविषयक ग्रन्थ लिखे गये उन सभी का उपजीव्य ग्रन्थ **'छन्दःसूत्र'** ही रहा है।

सौभाग्य के कुछ क्षण होते है, उनमें जिस किसी की उत्पत्ति होती है, वह प्रसिद्धि को प्राप्त होता है। यद्यपि आचार्य पिंगल की रचना के बाद अनेक छन्दःपरिचायक ग्रन्थों की रचना परवर्ती ग्रन्थकारों ने की है, तथापि श्रीकेदारभट्ट द्वारा रचित प्रस्तुत **'वृत्तरत्नाकर'** पर्याप्त प्रसिद्ध हुआ, इसका एक मात्र प्रमाण है कि यह अनेक महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की परीक्षा में पाठ्यपुस्तक के रूप में आहृत हुआ है। इसकी यह विशेषता है कि **पिंगलच्छन्दःसूत्र** की भाँति सूत्ररूप में इसका निर्माण न होकर यह छन्दोबद्ध है। प्रायः इसके लक्षण ही उदाहरण का रूप धारण कर लेते हैं, यह पाठकों के लिये अत्यन्त सुविधाजनक है। प्राचीन १४ टीकाकारों ने इस पर भाँति-भाँति की टीकाएँ लिखीं हैं। इन सबमें नारायणीटीका ज्ञानवर्द्धन की दृष्टि से उपयोगी है, किन्तु परीक्षा की दृष्टि से कोई भी विस्तृत टीका उतनी उपयुक्त नहीं होती।

इसके अनन्तर जिन छन्दोग्रन्थों से विद्वत्समाज अधिक परिचित है, उनकी गणना मात्र यहाँ की जा रही है—कालिदास कृत **श्रुतबोध**, हेमचन्द्रकृत **छन्दोऽनुशासन** आचार्य क्षेमेन्द्र का **सुवृत्ततिलक** तथा गंगादास द्वारा रचित **छन्दोमञ्जरी**।

वृत्तरत्नाकर का यह आदर्श संस्करण प्रस्तुत है। चौखम्बा सुरभारती परिवार ने इसके प्रकाशन का भार सहर्ष स्वीकार कर इसका प्रकाशन कर छात्रों का महान् उपकार किया है, अतः इनकी समृद्धि की कामना करता हूँ।

डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

विषयानुक्रमणिका

चतुर्थोऽध्यायः

अर्धसमवृत्तप्रकरण

पञ्चमोऽध्यायः

विषमवृत्तप्रकरण

षष्ठोऽध्यायः

(प्रत्यय)

॥ श्रीः ॥

वृत्तरत्नाकरः

चन्द्रिकाव्याख्ययोपेतः

प्रथमोऽध्यायः

सुखसन्तानसिद्ध्यर्थं नत्वा ब्रह्माच्युतार्चितम् ।
गौरीविनायकोपेतं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥ १ ॥

लोकत्रयस्थितिलयोदयकेलिकारः कार्येण यो हरि-हर-द्रुहिणत्वमेति ।
देवः स विश्वजन-वाङ्मनसातिवृत्त-शक्तिः शिवं दिशतु शश्वदनश्वरं नः ॥

वृत्तरत्नाकरोल्लासकारिणी चन्द्रिकाभिधा ।
व्याख्येयं बालबोधाय बलदेवेन तन्यते ॥

अथ 'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते, धीरपुरुषाण्यायुष्मत् पुरुषाणि च भवन्त्यध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ती'ति भगवतो-भाष्यकारस्य वचनमनुस्मरन् अविगीतशिष्टाचारविषयतया विघ्नसंघातस्य सद्यो नाशमिच्छन् वृत्तरत्नाकरस्य रचयिता केदारभट्टः स्वाभीष्टदेवतानमस्कारात्मकं मङ्गलं ग्रन्थस्यादौ रचयति—**सुखसन्तानसिद्ध्यर्थमित्यादिना** । सुखसन्तान-सिद्ध्यर्थं सुखस्य सन्तानम् अविच्छेदः सातत्येन प्रवृत्तिरिति यावत्, तस्य सिद्धिः निष्पत्तिः तदर्थं तत्प्रयोजनाय । प्रणामजनितविघ्ननाशादिसम्भूतानाकुलीभूत-बुद्धिवैभवसञ्जातसुखपरम्पराप्राप्त्यर्थमिति भावः । ब्रह्माच्युतार्चितं ब्रह्मा लोक-सृष्टिकर्ता प्रजापतिः, अच्युतः विश्वपोषणरतो विष्णुश्च; ताभ्यामर्चितं पूजितम् । गौरीविनायकोपेतं गौरी भगवती पार्वती विनायको गणेशः ताभ्यामुपेतं सहितम् । लोकशङ्करं लोकस्य सर्वस्य जगतः शं कल्याणं करोतीति तथाविधं कल्याणसंविधातारं शङ्करं भगवन्तं शिवं नत्वा अभिवन्द्य 'तेनेदं क्रियते छन्दः' इति तृतीयपदेन सह सम्बन्धः ।

भावार्थ—ग्रन्थ के आरम्भ में मंगल करना आचार है। शिष्ट लोग स्वयं सदा ऐसा करते आये हैं तथा अन्य लोगों को उपदेश देते आए हैं। इसलिये वृत्त-रत्नाकर के कर्ता केदारभट्ट ग्रन्थ के आरम्भ में अपने इष्टदेव शंकर जी को नमस्कार कर रहे हैं। ब्रह्मा तथा विष्णु से पूजित, गौरी तथा गणेश के संग में विराजमान, संसार के कल्याण करने वाले शंकर जी को सतत सुख पाने की अभिलाषा से नमस्कार कर मैं यह ग्रन्थ बना रहा हूँ। इस श्लोक का तीसरे श्लोक के साथ सबन्ध है। 'तेनेदं क्रियते छन्दः' के साथ 'नत्वा' का अन्वय करने ऊपर लिखा अर्थ निष्पन्न होता है ॥ १ ॥

वेदार्थ शैवशास्त्रज्ञः पव्येकोऽभूत् द्विजोत्तमः।
तस्य पुत्रोऽस्ति केदारः शिवपारार्चने रतः ॥ २ ॥

वेदानां ऋग्यजुः सामादीनां अर्थं तात्पर्यं, शैवशास्त्राणि च शिवपूजा-प्रतिपादकानि रुद्रयामलादीनि आगमशास्त्राणि च जानातीत्येवंभूतः पव्येकः तन्नामकः द्विजोत्तमः ब्राह्मणोत्तमः अभूत् बभूव। तस्य विप्रवर्यस्य पुत्रः केदारः केदाराभिधानः शिवपादार्चने भगवतो भर्गस्य पादारविन्दपूजायां रतः सर्वदैव उद्यतो विद्यते।

भावार्थ—वेदों के तात्पर्य के जानने वाले तथा शैवागमके विद्वान् 'पव्येक' नामक एक श्रेष्ठ-पूजनीय-ब्राह्मण थे। उन्हीं के पुत्र 'केदार' हुए जो सदा भगवान् शंकर के चरणारविन्द की पूजा करने में लगे रहते थे। इस श्लोक से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अपने पूज्य पिता के समान भट्टकेदार भी परम शैव थे। अतः प्रथम मङ्गलश्लोक में भगवान् शंकर की वन्दना करना नितान्त अनुरूप है ॥ २ ॥

तेनेदं क्रियते छन्दो लक्ष्य लक्षणसंयुतम्।
वृत्तरत्नाकरं नाम बालानां सुखबुद्धये ॥ ३ ॥

तेन केदारभट्टेन। लक्ष्यलक्षणसंयुतं लक्ष्यं मात्रावर्णान्यतरस्वरूपाणां छन्दसामुदाहरणं, लक्षणं छन्दःस्वरूपकथनं लक्ष्यमेव लक्षणम्। तेन संयुतं सनाथी-कृतम्। वृत्तरत्नाकरं वृत्तानि रत्नानीवेति वृत्तरत्नानि तेषामाकरः समूहो यत्र तद्। "आकरो निबहोत्पत्तिस्थानश्रेष्ठेषु कथ्यते" इति विश्वः। वृत्तरत्नाकरेति ग्रन्थाभिधानसूचनम्। वृत्तरत्नाकरं नाम इदं छन्दःप्रतिपादकं शास्त्रं बालाना-मनधिगतछन्दःशास्त्राणां सुखबुद्धये सुखेन अल्पोपायेन बुद्धये छन्दसां परिज्ञानाय क्रियते विरच्यते इति।

भावार्थ—जिन्होंने छन्दःशास्त्र का ज्ञान प्राप्त नहीं किया है, उन लोगों को सुखपूर्वक छन्दों का ज्ञान हो जाय, इसकी सिद्धि के लिए केदारभट्ट वृत्तरत्नाकर नामक उदाहरण तथा लक्षण से युक्त छन्दोग्रन्थ की रचना कर रहे हैं। इस ग्रन्थ में छन्दों के लक्षण जिस वाक्य में दिये गए हैं वही उनका उदाहरण भी है। एक ही साथ उदाहरण तथा लक्षण दोनों वस्तुएँ बतलाई गई हैं। यह बात इस ग्रन्थ की उपादेयता तथा लोकप्रियता बढाने में विशेषरूप से समर्थ हुई है॥ ३॥

पिङ्गलादिभिराचार्यैर्यदुक्तं लौकिकं द्विधा।
मात्रावर्णविभागेन छन्दस्तदिह कथ्यते॥ ४॥

एवं सामान्यतो ग्रन्थकरणं प्रतिज्ञाय प्रतिपाद्यमर्थं ग्रन्थकारः प्रतिजानीते पिङ्गलादिभिरित्यादिना। पिङ्गलादिभिः पिङ्गलः छन्दःसूत्राणां रचयिता। आदि-शब्देन भाष्यकारादयो गृह्यन्ते। तैराचार्यैः यत् लौकिकं लोके भवं, न तु वैदिकं, छन्दःमात्रावर्णविभागेन। आर्यादयो मात्राछन्दः, इन्द्रवज्रादयो वर्णच्छन्दः इति विभागकरणेन। द्विधा द्विप्रकारकं उक्तं प्रतिपादितम्, तद् छन्दः इह अस्मिन् ग्रन्थे वृत्तरत्नाकरे कथ्यते प्रतिपाद्यते। लौकिकशब्देन काव्यादिष्वनुपयोगात् वैदिकानां गायत्र्यादिच्छन्दसामस्मिन् ग्रन्थेऽभावः सूचितः।

भावार्थ—महर्षि पिङ्गल तथा अन्य आचार्यों ने लौकिक छन्दों को दो प्रकार का बतलाया है—(१) मात्राछन्द जिसमें मात्रा की संख्या पर छन्दों की रचना की जाती है, जैसे आर्या, उपगीति आदि। (२) वर्णछन्द—जिसमें अक्षरों की नियत संख्या पर छन्दों की रचना की जाती है, जैसे अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा आदि। दोनों प्रकार के लौकिक छन्दो को इस ग्रन्थ में कहा जायेगा। गायत्री आदि वैदिक छन्दों का वर्णन इस ग्रन्थ में नहीं किया जायगा। लौकिक छन्दों का प्रतिपादन ही इस पुस्तक का विषय है।

कुछ लोग 'मात्राच्छन्द' और 'गणच्छन्द' ये दो विभाग मानते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं है। क्योंकि 'श्री' और 'स्त्री' एक वर्ण तथा दो वर्ण वाले ऐसे छन्द हैं जिनमें 'गण' के द्वारा गणना नहीं की जा सकती। 'गण' तीन अक्षरों का होता है। अतः 'गणछन्द' न कहकर 'वर्णछन्द' कहना अधिक उपयुक्त तथा शुद्ध है॥ ४॥

षडध्यायनिबद्धस्य च्छन्दसोऽस्य परिस्फुटम्।
प्रमाणमपि विज्ञेयं षट्त्रिंशदधिकं शतम्॥ ५॥

षडध्यायनिबद्धस्य षड्भिः अध्यायैः निबद्धस्य विरचितस्य अस्य छन्दसः

छन्दोग्रन्थस्य वृत्तरत्नाकरस्य प्रमाणमपि षट्त्रिंशदधिकं षट्त्रिंशत् संख्याधिकं शतं (१३६) द्वात्रिंशदक्षराणामनुष्टुप्छन्दसामिति यावत् । परिस्फुटं स्पष्ट-रूपेण विज्ञेयं ज्ञातव्यम् । ग्रन्थगणनायां लोके प्रख्यातत्वात् अनुष्टुप् श्लोकपरि-माणं (३२ द्वात्रिंशदक्षरात्मकं) एवास्मिन् स्थले गृह्यते ।

भावार्थ—यह ग्रन्थ छ अध्यायों में रचा गया है और इसका प्रमाण १३६ श्लोक समझना चाहिए । ग्रन्थों की गणना के लिए श्लोक का ही परिणाम लिया जाता है । श्लोक ३२ बत्तीस अक्षरों का होता है । 'एक सौ छत्तीस' कहने से अभिप्राय यह कि इस ग्रन्थ में बत्तीस अक्षरों की गणना से उतने अनुष्टुप् श्लोक विद्यमान हैं ॥ ५ ॥

गणलक्षण—

म्यरस्तजभ्नगैर्लान्तैरेभिर्दशभिरक्षरैः ।
समस्तं वाङ्मयं व्याप्तं त्रैलोक्यमिव विष्णुना ॥ ६ ॥

विष्णुना त्रैलोक्यमिव । यथा नारायणेन समस्तं भुवनत्रयं व्याप्तं तिष्ठति तथैव समग्रं वाङ्मयं वाग्जालं 'म'गण-'य'गण-'र'गण-'स'गण-'त'गण-'ज'गण-'भ'गण–'न'गण–गै गुरुभिः लान्तैः लघु(ल)युक्तैः एभिः दशभिः दशसंख्याकैः अक्षरैः व्याप्तं विद्यते । अत्र दशस्वक्षरेषु आद्या अष्टावक्षराः मादयो गणबोधकः । अन्त्यौ गुरुलघुबोधकौ । तत्र गः गुरुरूपः लः लघुरूपः इति विवेकः ।

भावार्थ—जिस प्रकार यह त्रैलोक्य विष्णु भगवान् के द्वारा व्याप्त है, उसी प्रकार यह समस्त वाङ्मय मकारादि—म, य, र, स, त, ज, भ, न, ग तथा ल–इन दस अक्षरों से व्याप्त है । इन दस अक्षरों में आदि के आठ अक्षर—म, य, र, स, त, ज, भ, न—गणों के नाम हैं । 'ग' से गुरु का तथा 'ल' से लघु का संकेत समझना चाहिए । इन दसों की स्थिति सर्वत्र साहित्य में है ॥ ६ ॥

सर्वगुर्मो मुखान्तर्लो यरावन्तगलौ सतौ ।
ग् मध्याद्यौ ज्भौ त्रिलो नोऽष्टौ भवन्त्यत्र गणास्त्रिकाः ॥ ७ ॥

क्रमेणाष्टौ गणान् लक्षयति—अत्र अस्मिन् छन्दःशास्त्रे अष्टौ त्रिकाः त्र्यवयवा गणा भवन्ति । त्रयाणां वर्णानां समूहो गणशब्देन व्यपदिश्यतेऽस्मिन् छन्दःशास्त्रे । त्रिका इति परिमाणे कन् प्रत्ययो बोधव्यः । ते च यथा—सर्वगुः सर्वे गवः गुरवो यत्र इति सर्वगुः मगणो भवति । नामैकदेशे नाममात्रस्य ग्रह-णम्' इति न्यायात् 'गु'पदेन गुरुरुच्यते 'ल'शब्देन च लघुः । यत्र त्रयोऽपि

वर्णा गुरवः, असौ मगणः । मुखान्तलौ मुखे आदौ अन्तः मध्ये च लः लघुः ययोः तौ यरौ भवतः, यगण-रगण नाम्ना कथ्येते । अन्तगलौ अन्ते गलौ गुरुलघू ययोः तौ सतौ क्रमेण सगणतगणौ अभिधीयेते । ग् गुरुः मध्ये आद्यश्च ययोः तौ ज्भौ जगणभगणौ भवतः । त्रिलः त्रयो ला लघवो यत्रासौ नः = नगणः कथ्यते । इत्येते अष्टौ गणाः । तथा चोक्तं गणानां लक्षणं श्रुतबोधे—

आदिमध्यावसानेषु भजसा यान्ति गौरवम् ।
यरता लाघवं यान्ति मनौ तु गुरुलाघवम् ॥

भावार्थ—छन्दःशास्त्र में तीन अक्षरों के समूह को 'गण' कहते हैं । जहाँ तीनों अक्षर गुरु हों, उसे मगण कहते हैं । आदिलघु को यगण, मध्यलघु को रगण, अन्तगुरु को सगण, अन्तलघु को तगण कहते हैं । यदि आदि में गुरु हो तो भगण और यदि मध्य हो जगण होता है । तीनों यदि लघु हो तो नगण कहते हैं । इस प्रकार तीन तीन अक्षरों के आठ (८) गण होते हैं ।

इस श्लोक में 'गु' शब्द 'गुरु' का बोधक है तथा 'ल' शब्द लघु का । नियम यह है कि नाम के एक देश (अंश) ग्रहण करने से पूरे नाम का बोध हो जाता है । भीम शब्द प्रथमार्ध होने से 'भीमसेन' का बोधक है तथा भामा शब्द उत्तरार्ध होने से 'सत्यभामा' का वाचक है । इसी नियम के अनुसार प्रथमार्ध 'गु' और 'ल' शब्द गुरु तथा लघु के वाचक हैं ।

इन गणों का स्वरूप यों होगा :—

म	य	र	स	त	ज	भ	न
SSS	ISS	SIS	IIS	SSI	ISI	SII	III

[सीधी रेखा (।) लघु के लिए तथा टेढ़ी रेखा (S) गुरु के लिए लिखी जाती है । इसी का व्यवहार ऊपर किया गया है]

छन्दोमञ्जरी में इन गणों का लक्षण इस प्रकार किया गया है—

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादि गुरुः पुनरादिलघुर्यः ।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः ॥

छन्दःशास्त्र में इन गणों के विषय में बहुत विचार किया गया है इनके अलग-अलग देवता हैं । इनके फल भी भिन्न-भिन्न होते हैं । इनके स्वरूप भी अलग होते हैं । इस विषय का यत्किञ्चित् ही वर्णन जिज्ञासुओं के लिए यहाँ किया जाता है ।

मगण तथा नगण मित्र हैं । भगण तथा यगण भृत्य हैं । जगण तगण उदासीन हैं तथा रगण तथा सगण शत्रु होते हैं ।

मनौ मित्रे भयौ भृत्यावुदासीनौ जतौ स्मृतौ।
रसावरी नीचसंज्ञौ द्वौ द्वावेतौ मनीषिभिः ॥

मगण का देवता मही है; वह लक्ष्मी पैदा करता है। यगण का देवता जल है; वह वृद्धि को देता है। रगण का देवता अग्नि है, मरण इसका फल है। सगण का देवता वायु है, फल परदेशगमन है। तगण का देवता आकाश है; फल शून्य है। जगण का देवता सूर्य है; वह रोग पैदा करता है। भगण का देवता चन्द्रमा है। फल है निर्मल कीर्ति। नगण का देवता स्वर्ग है; वह सदा सुख देने वाला है।

मो[१] भूमिः श्रियमातनोति, य[२]जलं वृद्धिं, र[३]श्चाग्निर्मृति
सो[४] वायुः परदेशदूरगमनं, त[५]व्योम शून्यं फलम्।
जः[६] सूर्यो रुजमाददाति विपुलं, भेन्दुर्यशो[७] निर्मलम्
नो[८] नाकश्च सुखप्रदः फलमिदं प्राहुर्गणानां बुधाः ॥

कोष्ठक

	गणनाम	रूपम्	देवता	फलम्	मित्रादि	फलम्
१	मगण	SSS	मही	लक्ष्मी	मित्र	शुभ
२	यगण	ISS	जल	वृद्धि	दास	शुभ
३	रगण	SIS	अग्नि	मरण	शत्रु	अशुभ
४	सगण	IIS	वायु	विदेश	शत्रु	अशुभ
५	तगण	SSI	आकाश	शून्य	उदासीन	अशुभ
६	जगण	ISI	सूर्य	रोग	उदासीन	अशुभ
७	भगण	SII	चन्द्रमा	कीर्ति	दास	शुभ
८	नगण	III	स्वर्ग	आयुः	मित्र	शुभ

गणों के शुभा-शुभविचार के समान वर्णों का भी शुभाशुभविचार छन्दः-शास्त्र में किया जाता है। इसका पूरा-पूरा वर्णन नारायणभट्ट की वृत्तरत्नाकर-विवृत्ति में किया गया है। इसके वर्णन के लिए न तो यहाँ स्थान है न समय। साधारण रीति से ऋ, ङ्, झ, ञ, टवर्ग, पवर्ग, र, ल, ब, स, ह वर्ण अशुभ माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त सब अक्षर शुभ फल देते हैं। काव्य के आदि में न तो दुष्ट गणों का प्रयोग करना चाहिए और न अशुभ वर्णों का ॥ ७ ॥

ज्ञेयाः सर्वान्तमध्यादिगुरवोऽत्र चतुष्कलाः।
गणाश्चतुर्लघूपेताः पञ्चार्यादिषु संस्थिताः ॥ ८ ॥

साम्प्रतं मात्राच्छन्दःसूपयोगिनो गणानाह ग्रन्थकारः—आर्यादिषु मात्राच्छन्दःसु संस्थिताः चतुष्कलाः चतुर्मात्राः। सर्वान्तमध्यादिगुरवः सर्वत्र अन्ते मध्ये आदौ च गुरवो येषां ते तथाविधाः चतुर्लघूपेताः चतुर्भिः लघुभिः युक्ताश्च पञ्च गणाः ज्ञेयाः वेदितव्याः।

भावार्थ—आर्या आदि मात्राछन्दों में भी गण होते हैं। वे चार मात्राओं के होते हैं अर्थात् चार मात्राओं के समूह को एक गण मानते हैं। ऐसे पाँच गण होते हैं। पहले गण में सब गुरु होंगे। दूसरे में अन्त की मात्रा गुरु होगी। तीसरे में मध्य की मात्रा तथा चौथे में आदि की मात्रा गुरु होगी। पाँचवें गण में चार लघु होते हैं। इस प्रकार मात्राछन्द में ५ गण हैं यथा—

१	२	३	४	५
SS	IIS	ISI	SII	IIII
सर्वगुरुः	अन्तगुरु	मध्यगुरु	आदिगुरु	सर्वलघु

लघुगुरुलक्षण—

सानुस्वारो विसर्गान्तो दीर्घो युक्तपरश्च यः।
वा पदान्ते त्वसौ ग्वक्रो ज्ञेयोऽन्यो मात्रिको लजुः ॥ ९ ॥

गुरुं लक्षयति स्वानुस्वारे इत्यादिना—सानुस्वारः अनुस्वारेण सहितो वर्णः ग् गुरुः ज्ञेयः यथा कं खं गं घं इत्यादि। विसर्गान्तः विसर्गः अन्ते यस्यासौ विसर्गयुक्तो वर्णः गुरुः भवति, यथा अः कः इति। दीर्घः यथा आ ई ऊ इति। यश्च युक्तपरः युक्तः अन्येन वर्णेन संयुक्तः परो यस्यासौ संयुक्तादिरिति भावः गुरुः स्यात् यथा कृष्णः इत्यत्र 'ष्ण' इत्यस्मात् पूर्वो वर्णः ऋकारः गुरुर्भवति। तथा पदान्ते पद्यस्य चरणान्ते स्थितो लघुः वा विकल्पेन गुरुर्भवति। कदाचित् लघुः, कदाचिच्च गुरुः। गुरुः वक्रो भवति, प्रस्तारे तस्य 'S' इति चिह्नं विद्यते।

अन्यः मात्रिकः एकमात्रिकः ह्रस्वः लघुर्भवति। स च ऋजुः। तस्य चिह्नं ऋज्वात्मिका रेखा (।) इति।

भावार्थ—इस श्लोक में ग्रन्थकार ने लघु तथा गुरु का लक्षण दिया है। भिन्न-भिन्न दशा में स्वर गुरु हुआ करता है। ऐसी पाँच दशाओं का वर्णन यहाँ किया गया है। (१) अनुस्वार युक्त स्वर गुरु होता है यथा कंसः यहाँ सानुस्वार होने से अकार गुरु है। (२) जिसके अन्त में विसर्ग विद्यमान है वह गुरु होता है; जैसे रामः। यहाँ अन्त में विसर्ग होने के कारण 'म' का अकार गुरु है। (३) दीर्घ—द्विमात्रिक तथा प्लुत स्वर गुरु होता है; 'रामः' में दीर्घ होने से 'आ' गुरु है। (४) जिस स्वर के आगे संयुक्त वर्ण होगा, वह गुरु होता है यथा कृष्णः। यहाँ 'कृ' के ऋकार के आगे 'ष' तथा 'ण' का संयोग है। अतः यह ऋ गुरु होगा। 'युक्तपर' शब्द व्यञ्जन जिह्वामूलीय उपध्मानीय-परक शब्दों का उपलक्षण है। (i) व्यञ्जन परभाग में अर्थात् आगे रहने पर स्वर गुरु हो जाया करता है। यथा–'रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्।' (रघु १।९)। इस श्लोकार्ध में 'स' का अकार गुरु है क्योंकि उसके आगे व्यञ्जन (नकार) है। (ii) जिह्वामूलीय तथा (iii) उपध्मानीय आगे पर लघु स्वर गुरु हो जाता है। यथा—मन्द≍कवियश≍प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् (रघु० १।३) यहाँ जिह्वामूलीय परभाग में होने से 'द'कार गुरु है। तथा उपध्मानीय आगे होने से 'श' का अकार गुरु है। (५) पादान्त में विद्यमान स्वर विकल्प से गुरु होता है। 'पाद' का अर्थ है पद्य का चतुर्थांश अर्थात् चरण। चरण के अन्त में स्थित लघुस्वर गुरु होता है। यह वैकल्पिक नियम है। अतः आवश्यकतानुसार कहीं वह दीर्घ होगा और कहीं ह्रस्व ही रहेगा। यथा—

तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसुमपांसुलानां धुरि कीर्तनीया।
(रघु० २।२)

यहाँ प्रथम चरण के अन्त में विद्यमान (पांसु का) उकार गुरु है, क्योंकि 'इन्द्रवज्रा' के चरण होने के कारण अन्तिम स्वर गुरु होना चाहिए।

गुरु सदा प्रस्तार में अवग्रहसूचक रेखा के समान (ऽ) वक्र रेखा से चिह्नित किया जाता है। इन प्रकारों से भिन्न एकमात्रिक ह्रस्व स्वर को लघु कहते हैं। इसका संकेत सीधी रेखा (।) से किया जाता है॥ ९॥

पादादाविह वर्णस्य संयोगः क्रमसंज्ञकः।
पुरःस्थितेन तेन स्यात् लघुतापि क्वचिद् गुरोः ॥ १० ॥

इह छन्दःशास्त्रे पादादौ चरणानामारम्भे अक्षरस्य संयोगः क्रम संज्ञको भवति। क्रमेति नाम्ना पूर्वाचार्यैः व्यवह्रियते। पुरःस्थितेन अग्रे विद्यमानेन तेन क्वचित् अपेक्षितस्थले गुरोः गुरुवर्णस्य लघुतापि लघुभावो भवति। 'वा पादान्ते' इति पादान्ते ह्रस्ववर्णस्य गुरुता भवति। अत्र तु पादादौ संयुक्तपरस्य गुरोः लघुतेत्युभयोः विषयपार्थक्यं स्फुटमेव।

भावार्थ—पाद के आदि में होने वाले अक्षरसंयोग को छन्दःशास्त्र के आचार्य 'क्रम' कहते हैं। उसके आगे रहने पर कहीं-कहीं गुरु वर्ण भी लघु बन जाया करता है। 'युक्त परश्च यः' के नियम से संयुक्तपरक होने से स्वर गुरु हो जाता है परन्तु कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार वह गुरु भी लघ हो जाता है। इसका उदाहरण आगे के पद्य में दिया गया है ॥ १० ॥

इदमस्योदाहरणम्

तरुणं सर्षपशाकं नवौदनं पिच्छलानि च दधीनि।
अल्पव्ययेन सुन्दरि! ग्राम्यजनो मिष्ठमश्नाति ॥ ११ ॥

गुरुवर्णस्य लघुभावमुदाहरति तरुणमित्यादिना। अत्र ग्राम्यनायके समासक्तचित्तां काञ्चन सुन्दरीं निवारयितुमिच्छन्ती कापि तदीया सखी स्तुति मुखेन निन्दामुपन्यस्यति। हे सुन्दरि! ग्राम्यजनः ग्रामीणो लोकः तरुणं पेशलं सर्षपशाकं, नवौदन नवानां धान्यानां ओदनं भक्तं, तथा च पिच्छलानि बद्धानि दधीनि अश्नाति भुङ्क्ते। एवं अल्पव्ययेन स्वल्पद्रव्येण मिष्टं मधुरमश्नाति ग्रामीणः पुरुषः। मोदकादीनां तत्र ग्रामे नितरामभावात्। कमनीयकलेवरया भवत्या नायं ग्रामीणोऽचतुरः सेवनीय इति भावः। अत्र चतुर्थचरणस्यादौ स्थितः संयुक्तः 'ग्र' इति शब्दः क्रमनामा भवति। तथा संयुक्तपरत्वात् गुरुः 'सुन्दरि' इत्येतस्य इकारः आर्यायाः तृतीया चरणस्थद्वादशमात्रा निर्वाहकतया लघुभावं स्वीकरोति।

भावार्थ—इस आर्या में पूर्व श्लोक में दिये गए नियम का उदाहरण मिलता है। इस आर्या के अर्थ में बड़ी रसिकता भरी है। किसी गँवई से प्रेम करने वाली सुन्दरी को उसकी चतुर सखी समझा रही है—ऐ सुन्दरी! गाँव के लोग भी बड़े कम दाम में मीठी चीजें खाया करते हैं। देखिए, उनके भोजन की चीजें कितनी मीठी परन्तु कितनी सस्ती हैं—कोमल सरसों का साक-

नए चावल का भात तथा खूब जमा दही ! वाह क्या कहना है ! अभिप्राय ग्राम्यजीवन की प्रंशसा से नहीं, परन्तु निन्दा से है। आशय है कि अपना चित्त इस ग्रामीण नायक से हटा लो। इस आर्या में चतुर्थ पाद के आरम्भ में 'ग' तथा 'र' का संयोग है, जो क्रम कहलावेगा। इसके पहले वाला 'सुन्दरि' का इकार युक्तपरक होने से गुरु है; परन्तु इसे गुरु मानने से आर्या के तीसरे चरण में १३ मात्राएँ हो जाती हैं; नियम से चाहिए केवल १२ ही। अतः आवश्यकता होने से यहाँ दीर्घ भी इकार लघु हो जायगा।

१० वें श्लोक में पादान्त गुरु के लघु होने का नियम है; परन्तु यह उपलक्षणमात्र है। कहीं-कहीं पादान्त में न रहने वाला भी गुरु स्वर 'प्र' तथा 'ह्र' के पहले लघु हो जाता है। 'प्रह्रे वा' सूत्र के द्वारा पिङ्गल मुनि ने इसी नियम का उल्लेख किया है। महाकाव्यों में इसके उदाहरण मिलते हैं। यथा—

सा मङ्गलस्नानविशुद्धगात्री गृहीत प्रत्युद्गमनीयवस्त्रा ॥

(कुमार ७।११)

कालिदास के इस प्रसिद्ध पद्य में 'गृहीत' शब्द का अकार संयोगपरक होने से गुरु है परन्तु 'प्र' के पहले होने के कारण वह लघु है। यह पाद के अन्त में भी नहीं है, प्रत्युत द्वितीय पाद के बीच में है। इसी प्रकार महाकवि माघ के

प्राप्य नाभिह्रदमज्जनमाशु प्रस्थितं निवसनग्रहणाय।

(शिशु० १०।६०)

पद्य में 'ह्र' के पूर्व में विद्यमान गुरु इकार लघु हो गया है। यहाँ नाभि शब्द प्रथम पाद के बीच में है, अन्त में नहीं। ऐसे उदाहरण अन्य महाकवियों के काव्यों में भी उपलब्ध हो सकते हैं। इनका प्रयोग अपनी इच्छा से कभी नहीं करना चाहिए ॥ ११ ॥

अब्धिभूतरसादीनां ज्ञेया संज्ञात्र लोकतः।
ज्ञेयः पादश्चतुर्थोंऽशो यतिर्विच्छेदसंज्ञिका ॥ १२ ॥

छन्दःशास्त्रे प्रयुज्यमानान् काँश्चित् पारिभाषिकशब्दानाह—**अब्धीति**। अत्र शास्त्रे अब्धिभूतरसादीनां शब्दानां संज्ञा नामकरणं लोकतः लोकव्यवहारात् ज्ञेया अवगन्तव्याः। अब्धिः समुद्रः चतुःसंख्याबोधकः लोके तथैव ख्यातेः। एवमन्यत्रापि अवगन्तव्यम्। भूतानि पञ्च (५), रसाः षट् (६)। एवमादिग्रहणादन्येषामपि शब्दानामत्र ग्रहणम्, तथा च अश्वा मुनयः सप्त, गिरयो वसवश्चाष्टौ, ग्रहा नव, दिशः दश। अतएव एते तत्तत्संख्याबोधकाः पूर्वाचार्यैरस्मिन् शास्त्रे

गृहीता वेदितव्याः । श्लोकस्य चतुर्थः अंशः भागः पादो ज्ञेयः पादचरणादिनाम्नाऽभिधीयते । यतिः विरामः सा च पदानां विच्छेदसंज्ञिका भवति ।

भावार्थ—इस श्लोक में पारिभाषिक शब्दों का अर्थ दिया गया। अब्धि (समुद्र), भूत, रस, आदि शब्दों की संज्ञा लोक से जानना चाहिए अर्थात् संसार में ये चीजें जितनी हैं उतनी संख्या का बोधन ये शब्द अथवा इनके पर्यायवाचक शब्द छन्दःशास्त्र करेंगे। यथा अब्धि, समुद्र ४ के लिए व्यवहृत होता है; भूत का अर्थ ५ है, रस से ६, अश्व या मुनि से ७, गिरि तथा वसु से ८, ग्रह से ९, दिशा से १०, रुद्र से ११, आदित्य से १२ का बोध होता है। इसी प्रकार छन्दःशास्त्र में इन शब्दों का ही उपयोग संख्या द्योतित करने के लिए किया जाता है। पद्य के चतुर्थ भाग को पाद अथवा चरण कहते हैं। जहाँ वृत्त में विराम होता है, जहाँ ठहरना पड़ता है, वहाँ यति होती है। विच्छेद या विराम का नाम यति है। मन्दाक्रान्ता में तीन स्थानों पर ठहरना पड़ता है—चौथे, अनन्तर उससे छठे पश्चात् उससे साँतवे वर्ण पर विराम होता है; वहाँ यति समझना चाहिए। यथा—कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः ॥ (मेघ० १।१) ॥ १२ ॥

युक् समं विषमं चायुक् स्थानं सद्भिर्निगद्यते ।
सममर्धसमं वृत्तं विषमं च तथाऽपरम् ॥ १३ ॥

समं स्थानं द्वितीयचतुर्थस्थानं 'युक्' इति नाम्ना सद्भिः निगद्यते कथ्यते । एवं विषमं स्थानं प्रथमतृतीयादिस्थानं अयुगिति नाम्ना उच्यते । अथ वृत्तं वर्णिकं छन्दः समं अर्धसमं विषममिति त्रिधा भिन्नं भवति ॥

भावार्थ—समस्थान को—द्वितीय, चतुर्थ आदि स्थान को पण्डित लोग 'युक्' (जोड़ा) नाम से प्रकारते हैं तथा प्रथम, तृतीय आदि विषमस्थान को 'अयुक्' (फूट) कहते हैं।

अब वृत्त का विभाग किया जायगा। पद्य दो प्रकार का होता है—जाति तथा वृत्त। जाति छन्द मात्राओं की संख्या पर अवलम्बित रहता है। वृत्त वर्णों के नियमित सन्निवेश पर। वृत्त तीन प्रकार का होता है—सम, अर्धसम तथा विषम ॥ १३ ॥

समवृत्त

अङ्घ्रयो यस्य चत्वारस्तुल्यलक्षणलक्षिताः ।
तत् छन्दःशास्त्रतत्त्वज्ञाः समं वृत्तं प्रचक्षते ॥ १४ ॥

समवृत्तमाह—यस्य पद्यस्य चत्वारः अङ्घ्रयः पादाः तुल्यलक्षणलक्षितः तुल्येन समानेन लक्षणेन लक्षिता युक्ताः सन्ति, छन्दःशास्त्रतत्त्वज्ञाः छन्दःशास्त्रविदः तद् वृत्तं समं प्रचक्षते कथयन्ति। यथा उपेन्द्रवज्रादि अत्र सर्वेऽपि पादा एकादशवर्णात्मकाः समानलक्षणभाजश्च भवन्ति।

भावार्थ—जिस पद्य के चारों चरण एक ही प्रकार के हों—एक ही लक्षण से युक्त हों, छन्दःशास्त्र के मर्मज्ञ लोग उसे **समवृत्त** कहते हैं। यथा उपेन्द्रवज्रा यह समवृत्त है क्योंकि इसमें चारों चरणों में ११ अक्षर होते हैं और उनमें गुरु लघु का नियम एक ही समान होता है॥ १४॥

अर्धसमवृत्त

प्रथमाङ्घ्रिसमो यस्य तृतीयश्चरणो भवेत्।
द्वितीयस्तुर्यवत् वृत्तं तदर्धसममुच्यते॥ १५॥

यस्य पद्यस्य तृतीयः चरणः प्रथमाङ्घ्रिसमः प्रथमपादतुल्यो भवति। तथा द्वितीयः चरणः तुर्यवत् चतुर्थपादवत् भवति, तद्वृत्तं अर्धसममिति उच्यते। यथा पुष्पिताग्रा। यतो ह्यत्र प्रथमतृतीयौ द्वितीयचतुर्थौ च समानाकारौ भवतः।

भावार्थ—जिस वृत्त का तीसरा चरण पहले के समान तथा दूसरा चरण चौथे के तुल्य हो, उसे **अर्धसम** वृत्त कहते हैं। जैसे पुष्पिताग्रा छन्द। क्योंकि इसमें प्रथम तथा तृतीय, द्वितीय तथा चतुर्थपाद एक समान होते हैं॥ १५॥

विषमवृत्त

यस्य पादचतुष्केऽपि लक्ष्म भिन्नं परस्परम्,
तदाहुः विषमं वृत्तं छन्दःशास्त्रविशारदाः॥ १६॥

यस्य पादचतुष्के चतुर्ष्वपि पादेषु लक्ष्म लक्षणं परस्परं मिथः भिन्नं दृश्यते, छन्दःशास्त्रविशारदाः तद् वृत्तं विषमं कथयन्ति। यथा कलिका छन्दः।

भावार्थ—जिसके चारों चरणों के लक्षण आपस में भिन्न हों, छन्द के पण्डित लोग उस वृत्त को **'विषम'** नाम से पुकारते हैं। यथा कलिका वृत्त। चारों चरणों के भिन्न होने से यह विषमवृत्त है॥ १६॥

आरभ्यैकाक्षरात् पादादेकैकाक्षरवर्धितैः।
पृथक् छन्दो भवेत्पादैर्यावत् षड्विंशतिगतम्॥ १७॥

समवृत्तभेदानाह—एकाक्षरात् पादात् आरभ्य एकाक्षरवर्धितैः एकेन-एकेन अक्षरेण वर्धितैः पादैः यावत् षड्विंशति (२६) षड्विंशतिसंख्याकं प्रति गतं गमनं भवति, तावत् पृथक् भिन्नं छन्दो भवेत्।

भावार्थ—एक अक्षर वाले पाद से शुरु कर जब तक २६ अक्षर तक का चरण न हो जाय तब तक एक-एक अक्षर को पादों में बढ़ाने से भिन्न-भिन्न छन्द तैयार होते हैं। यह श्लोक समवृत्त के भेदों का वर्णन करता है। समवृत्त में २६ भेद होंगे। पहले प्रकार के पाद में केवल एक ही अक्षर होता है। पाद में एक-एक अक्षर बढ़ाता जाय छन्द भी तदनुसार भिन्न होता जायेगा। अन्तिम छन्द के पाद में २६ वर्ण होगें ॥ १७ ॥

तदूर्ध्वं चण्डवृष्टयादिदण्डकाः परिकीर्तिताः।
शेषं गाथास्त्रिभिः षड्भिश्चरणैश्चोपलक्षिताः ॥ १८ ॥

दण्डकं लक्षयति—तदूर्ध्वं तस्मात् षड्विंशत्यक्षरात्मकपादात् वृत्तात् ऊर्ध्वं सप्तविंशत्याद्यक्षरपादा यदि भवन्ति तदा ते चण्डवृष्टयाद्यभिधानाः दण्डकाः परिकीर्तिता भवन्ति। शेषं एभ्यो वृत्तेभ्योऽन्याः त्रिभिः षड्भिः चरणैः उपलक्षिता संयुताः गाथाः भवन्ति।

भावार्थ—यदि किसी वृत्त के चरण छब्बीस अक्षर से बढ़कर वर्ण हों अर्थात् सताइस अक्षर के पाद हों तो उसे **दण्डक** कहते हैं। इनके भिन्न-भिन्न प्रकार हैं जैसे चण्ड वृष्टि, अर्णव आदि। दण्डकों के पादों में एक एक अक्षर नहीं बढ़ता, प्रत्युत एक एक रगण (ऽ।ऽ) बढ़ता जाता है। अर्थात् २७ अक्षर पाद वाले दण्डक आगे ३० अक्षर पाद वाला दण्डक होगा, न कि २८ अक्षरों का।

इनसे भिन्न छन्द **गाथा** कहलाते हैं। इन में कभी तीन चरण होते हैं कभी छ और कभी दस। अक्षर भी न्यूनाधिक हुआ करते हैं ॥ १८ ॥

उक्ताऽत्युक्ता तथा मध्या प्रतिष्ठाऽन्या सुपूर्विका।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च ॥ १९ ॥
त्रिष्टुप् च जगती चैव तथाऽतिजगती मता।
शक्वरी साऽतिपूर्वा स्यादष्टयत्यष्टी तथा स्मृते ॥ २० ॥
धृतिश्चातिधृतिश्चैव कृतिः प्रकृतिराकृतिः।
विकृतिः सङ्कृतिश्चैव तथाऽतिकृतिरुत्कृतिः ॥ २१ ॥

अत्र पूर्वोक्तानामेकाक्षरपादारभ्य षड्विंशत्यक्षरपादानां छन्दसां सामान्यतो या जाति संज्ञा भवन्ति। ता आह—एकाक्षरपादं छन्दः उक्तेति नाम्नाभिधीयते। एवं द्व्यक्षरपादं वृत्तं अत्युक्तं नाम। 'अन्या-सुपूर्विका' प्रतिष्ठातोऽन्या सुप्रतिष्ठा भवतीति यावत्। 'साऽतिपूर्वा' अर्थात् शक्वरीतोऽग्रिमा जातिः अतिशक्वरीति

नाम लभते इति तात्पर्यम् । अत्र प्रतिपादमेकैकाक्षरवृद्धौ समग्रे छन्दसि चतुरक्षरा वृद्धिर्भवति । यथा उक्तायां चत्वारोऽक्षराः, अत्युक्तायां अष्टौ, मध्यायां द्वादश, प्रतिष्ठायां षोडश । एवं विद्यार्थिभिः सर्वेषु च्छन्दःसु चतुरक्षराणां वृद्धि-रवधेया । अधुना नामानि प्रदर्श्यन्ते सर्वासां जातीनाम्— १. उक्ता, २. अत्युक्ता, ३. मध्या, ४. प्रतिष्ठा, ५. सुप्रतिष्ठा, ६. गायत्री, ७. उष्णिग्, ८. अनुष्टुप्, ९. बृहती, १०. पङ्क्ति, ११. त्रिष्टुप्, १२. जगती, १३. अतिजगती, १४. शक्वरी, १५. अतिशक्वरी, १६. अष्टिः, १७. अत्यष्टिः, १८. धृतिः, १९. अतिधृतिः, २०. कृतिः, २१. प्रकृतिः, २२. आकृतिः, २३. विकृतिः, २४. संकृति, २५. अतिकृतिः, २६. उत्कृतिः ।

भावार्थ—सत्तरहवें श्लोक में कहा गया है कि २६ प्रकार के समवृत्त होते हैं जिन में एक अक्षर से लेकर छब्बीस अक्षर तक एक-एक पाद में होंगे । इन छन्दों की जातियाँ होती हैं जिनका उल्लेख इन् तीन श्लोकों में किया जाता है । प्रत्येक छन्द एक जाति से सम्बन्ध रखता है । अतः नियमतः २६ जातियाँ होती है । इनके नाम क्रमशः यों है । १. उक्ता (एकाक्षर पाद वाले छन्द की यह जाति है; इसी प्रकार अन्य जातियाँ क्रमशः भिन्न-भिन्न अक्षर वाले छन्दों की संज्ञाएँ हैं) २. अत्युक्ता, ३. मध्या, ४. प्रतिष्ठा, ५. सुप्रतिष्ठा, ६. गायत्री, ७. उष्णिग्, ८. अनुष्टुप्, ९. बृहती, १०. पङ्क्ति, ११. त्रिष्टुप्, १२. जगती, १३. अतिजगती, १४. शक्करी; १५. अतिशक्वरी, १६. अष्टि, १७. अत्यष्टि, १८. धृति, १९. अतिधृति २०. कृति २१. प्रकृति, २२. आकृति १३. विकृति, २४. संकृति, २५. अतिकृति, २६. उत्कृति । इन छन्दों में चार-चार अक्षर बढ़ते जाते हैं । उक्ता जाति में चार अक्षर होते हैं; अत्युक्ता में आठ अक्षर होते हैं, मध्या में बारह, प्रतिष्ठा में सोलह । इसी प्रकार अन्य जातियों में भी क्रमशः अक्षरवृद्धि होती है ॥ १९–२१ ॥

इत्युक्ताश्छन्दसां संज्ञाः क्रमतो वच्मि साम्प्रतम् ।
लक्षणं सर्ववृत्तानां मात्रावृत्तानुपूर्वकम् ॥ २२ ॥

इति श्री केदारभट्टविरचिते वृत्तरत्नाकरे संज्ञाभिधानो नाम प्रथमोऽध्यायः ।

इति एवं प्रकारेण उक्ताऽत्युक्तादिरूपेण छन्दसां संज्ञाः उक्ताः । साम्प्रतमधुना मात्रावृत्तानुपूर्वकं सर्ववृत्तानां सर्वेषां वृत्तानां क्रमतः अनुक्रमेण लक्षणं वच्मि । आदौ मात्राछन्दसां लक्षणं कथ्यते । तदनन्तरं क्रमशः वर्णच्छन्दसामिति भावः ।

भावार्थ—छन्दों की संज्ञाएँ इस प्रकार उक्तादिभेद से कही गई हैं। अब मैं मात्रा छन्दों के लक्षण पहले देकर सकल वर्णवृत्तों का लक्षण क्रम वर्णन करूँगा। अर्थात् पहले आर्यादि मात्रिक छन्दों के लक्षण दिये जायेंगे। (द्वितीय अध्याय में।) तदनन्तर वर्णिक छन्दों का वर्णन क्रमशः रहेगा। (तृतीय अध्याय में) क्रमशः कहने का तात्पर्य यह है कि सर्वप्रथम एक अक्षर जिस के पाद में होगा, उस वृत्त का लक्षण दिया जायगा, फिर दो अक्षर पाद वाले का। इसी प्रकार अन्य सब वृत्तों का लक्षण लिखा जायगा ॥ २२ ॥

इति चन्द्रिकाख्यायां वृत्तरत्नाकर व्याख्यायां
संज्ञाभिधानो माम प्रथमोऽध्यायः ॥

द्वितीयोऽध्यायः

मात्रावृत्ताधिकारः

लक्ष्मैतत् सप्त गणा गोपेता भवति नेह विषमे जः ।
षष्ठोऽयं नलघू वा प्रथमेऽर्धे नियतमार्यायाः ॥ १ ॥

अथ मात्रावृत्तानि वर्णयितुमिच्छुर्ग्रन्थकारः प्रथमतः पद्यद्वयेन आर्यां लक्षयति—आर्यायाः प्रथमेऽर्धे पूर्वार्धे नियतं निश्चयेन एतत् लक्ष्म लक्षणं भवति । किं तदित्यपेक्षायामाह—सप्त गणा गोपेताः । गोपेता एकेन गुरुणा संयुक्ताः सप्तसंख्याकाः गणाः चतुष्कला भवन्ति । अत्र गणाश्चतुष्कला एव गृह्यन्ते आर्यायाः मात्रावृत्तत्वादिति सम्यगवगन्तव्यम् । आदौ सप्तगणाः भवन्ति, अन्ते च गुरुरिति भावः । इत्थमार्यायाः पूर्वार्धे (७ × ४ + २ = ३०) त्रिंशन्मात्रा भवन्ति । तत्र प्रथमे पादे द्वादश (१२) द्वितीये च अष्टादश (१८) इति विवेकः । साम्प्रतं लक्षणमुक्त्वा गणनियमं समुपन्यस्यति—"भवति नेह विषमे जः" इह आर्यापूर्वार्धे विषमे प्रथमतृतीयपञ्चमसप्तमस्थाने जः मध्यगुरुर्जगणः (।ऽ।) न भवति समे तु यथेच्छं स्थापनीयः न तु विषमे इति तात्पर्यम् । विशेषमाह—षष्ठः गणः अयं जगणो भवति अथवा नलघू वा । नश्च नगणश्च लघुश्चेति नलघू । नगणः सर्वलघुर्गणो लघुश्च स्थापनीयः । 'नलघू' चतुर्मात्राः (३ + १) अयमभिप्रायः—षष्ठे गणे मध्यगुरुर्जगणो भवति अथवा चत्वारो लघवो भवन्ति । इति आर्यायाः पूर्वार्धस्य लक्षणम् ।

भावार्थ—इस पद्य में आर्या के पूर्वार्ध का लक्षण दिया गया है । आर्या के पहले अर्ध में (पूर्वार्ध में) निश्चय रूप से यह लक्षण समझना चाहिए । कौन लक्षण ? पहले सात गण होते हैं और अन्त में एक गुरु होता है । आर्या मात्रा वृत्त है । अतः यहाँ गण चार मात्राओं के समझने चाहिए । इस प्रकार आर्या के पूर्वार्ध में (७ × ४ + २ = ३०) तीस मात्राएँ होती हैं जिनमें १२ मात्राएँ प्रथम चरण में होती हैं और १८ मात्राएँ द्वितीय चरण में ।

अब गणों का विचार किया जाता है । विषम स्थान में—प्रथम, तृतीय, पञ्चम तथा सप्तम गणों के स्थाने में—मध्य गुरु जगण कभी नहीं होता । (दूसरा, चौथा तथा छठा) स्थानों में जगण रखा जा सकता है, परन्तु विषम

स्थान में तो यह कदापि नहीं रखा जा सकता। छठा गण जगण हो सकता है अथवा वहाँ चार लघु रखे जा सकते हैं। 'नलघू' शब्द का अर्थ होता है चार लघु; क्योंकि नगण में तीन लघु होते हैं और उसमें एक लघु जोड़ने पर लघु की संख्या चार होगी। ग्रन्थकार का आशय यह है कि चतुर्मात्रिक छठे गण की जगह जगण (।ऽ।) होना चाहिए या चार लघु अक्षर।

अब उदाहरण के द्वारा इस लक्षण का समन्वय प्रदर्शित किया जायेगा—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
आदिगुरु जगण सर्वगुरु नलघू सर्वगुरु जगण सर्वगुरु गु०
ऽ।।।ऽ।ऽऽ ।।।। ऽऽ।ऽ। ऽऽ ऽ
हन्त विरहः समन्तात्, ज्वलयति दुर्वारतीव्र-संवे-गः।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७
अन्तगुरु नलघू आदिगुरु जगण स.गु. लघु आदि. गु०
अरुणस्तपनशिलामिव, पुनर्न मां भस्मतां नयति॥

यह गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती की (सं० ६९१) एक आर्या है। इसके पूर्वार्ध में ७ चतुष्कलात्मक गण हैं तथा अन्त में १ गुरु है। प्रथम पाद तीसरे गण पर समाप्त हो जाता है इसमें १२ मात्राएँ हैं, दूसरे पाद में १८ हैं। यहाँ विषम गण में जगण नहीं है, बल्कि समस्थान में हैं। दूसरा तथा चौथा भी गण जगण है। छठा गण यहाँ जगण है। अतः यह आर्या षष्ठ जगण वाली है।

पहला गण आदिगुरु है, तीसरा सर्वगुरु, पाँचवाँ तथा सातवाँ गण भी सर्वगुरु है। इनमें कोई भी जगण नहीं॥ १॥

षष्ठे द्वितीयलात् परके न्ले मुखलाच्च सयतिपदनियमः।
चरमेऽर्धे पञ्चमके तस्मादिह भवति षष्ठो लः॥ २॥

अधुना आर्यायां यतिनियमं वर्णयति ग्रन्थकारः—षष्ठे न्ले नगणयुक्ते लघौ अर्थात् षष्ठ स्थाने चतुर्लघौ गणे कृते सति द्वितीयलात् पूर्वमिति शेषः षष्ठस्य चतुर्लघोः द्वितीयलघोः पूर्वं प्रथम लघ्वनन्तरं सयति पदनियमः यतियुक्तं पदं नियमेन समाप्यते। तथा च परके न्ले षष्ठापेक्षया परस्मिन् सप्तमस्थाने न्ले

चतुर्लघौ कृते सति मुखलात् प्रथम लघोः पूर्वमेव षष्ठगणानन्तरं सयति पद-नियमो भवति। चरमेऽर्धे उत्तरार्धे पञ्चमके न्ले पञ्चमस्थाने चतुर्लघौ गणे सति तस्मात् मुखलात् प्रथमलघोः पूर्वं चतुर्थं गणान्ते सयति पदं नियम्यते। इत्यर्थः 'मुखलाच्च सयतिपदनियमः' इत्यस्याध्याहारात् लभ्यते। अधुना आर्योत्तरार्धस्य लक्षणमाह—इह भवति षष्ठो लः। उत्तरार्धे षष्ठो गणः लघु-रेको भवति अर्थात् षष्ठस्थाने एको लघुः स्थाप्यते नान्यः कश्चित्। पूर्वार्धवत् आर्याया उत्तरार्धेऽपि सप्त गणा भवन्ति अन्ते च गुरुः इयानेव विशेषो यत् षष्ठ गणस्य स्थाने केवलं लघुरेको विन्यस्यते। अन्यत् सर्वं समानमिति ग्रन्थकर्तु-राशयः इति।

आर्यायाः सरलतरं लक्षणं श्रुतबोधे समुपलभ्यते। तद् यथा—

यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या॥

आर्या लक्षणात्मकमिदं पद्यद्वयं (१--२) श्रीमता गङ्गादासेन छन्दोमञ्जर्याम् आर्याया. वर्णनाय समुद्धृतं दृश्यते॥

भावार्थ—इस पद्य में ग्रन्थकार ने आर्या में यति के नियम का उल्लेख किया गया है। यह तो कहा ही जा चुका है कि यति विराम को कहते हैं। अब यह देखना है कि आर्या छन्द में कहाँ-कहाँ पदविराम होगा। ऐसे पद विरामों के तीन नियमों का वर्णन यहाँ किया गया है।

(१) यदि आर्या के पूर्वार्ध में षष्ठ स्नान में (नलघू) चार लघु हों, तो दूसरे लघु के पहले ही विराम होगा। अर्थात् छठे स्थान में चार लघु होंगे। इनमें पहले लघु के अन्त में यतियुक्त पद रहेगा।

(२) यदि छठे के आगे वाले अर्थात् सातवे स्थान में (न्ल = नगण + लघु) चार लघु वाला गण हो, तो प्रथम लघु के पहले पद में यति होगी अर्थात् छठे गण के अन्त में विराम रहेगा। सातवे गण में चार लघु हैं उसके पहले लघु के पहले ही यति होगी जो षष्ठ गण के अन्तिम वर्ण पर पड़ेगी।

(३) यदि चरम अर्ध (उत्तरार्ध) के पाँचवे गण की जगह चार लघु हों, तो वहाँ भी प्रथम लघु के पहले ही यति रहेगी अर्थात् चौथे गण के अन्त में यति होगी।

इन यतिनियमों के अनन्तर आर्या के उत्तरार्ध का लक्षण दिया जाता है—"इह भवति षष्ठो लः"। यहाँ उत्तरार्ध में छठे गण के स्थान में केवल एक लघु

होता है। तात्पर्य यह है कि पूर्वार्ध के समान उत्तरार्ध में भी सात गण आदि में तथा एक गुरु अन्त में होता है। अन्तर इतना ही है कि जहाँ पूर्वार्ध में छठा गण चार मात्राओं का होता, वहाँ उत्तरार्ध में केवल एक लघु होता है। इस प्रकार उत्तरार्ध में तीन मात्राएँ कम होने से २७ ही मात्राएँ होती हैं।

छन्दोमञ्जरी में नीचे लिखी आर्या उदाहरण के रूप में दी गई है। इसमें पूर्वोक्त नियमों का प्रदर्शन किया जा सकता है।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ गुरु

वृन्दावनेस-लीलं वल्गुद्रुमकाण्डनिहिततनुयष्टिः।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ गुरु

स्मेरमुखार्पितवेणुः कृष्णो यदि मनसि कः स्वर्गः ॥

यह आर्या है, क्योंकि इसके पूर्वार्ध में ७ गण हैं और अन्त में एक गुरु है तथा उत्तरार्ध में उसी प्रकार ७ गण हैं तथा अन्त में १ गुरु है विशेषता यह कि ६ वें गण के स्थान में केवल १ लघु ('सि') है। [ऊपर के उदाहरण के गणों की सूक्ष्म रीति से परीक्षा कर इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए]

यहाँ पूर्वार्ध के छठे गण में (ण्डनिहित) चार लघु हैं। अतः द्वितीय लघु (नि) के पहले यति है अर्थात् 'ण्ड' पर यति युक्त पद समाप्त होता है। पाठक पढ़कर जान सकते हैं कि 'काण्ड' के ण्ड पर विराम है। इसी प्रकार यहाँ उत्तरार्ध का पाँचवा गण (यदि मन-) चार लघु अक्षरों का है। अतः उपरि निर्दिष्ट तीसरे नियम के अनुसार प्रथम लघु के पूर्व यहाँ यति होगी और यहाँ यति है भी 'य' के पहले, 'कृष्णो' के अन्तिम अक्षर पर। पढ़कर इसका निश्चय विद्यार्थी कर सकते हैं ॥ २ ॥

विशेष—मात्रा छन्दों में आर्या सबसे मुख्य है प्राकृत में भी ठीक ऐसा ही एक छन्द होता है जिसका नाम 'गाथा' है। कुछ विद्वानों का है कि 'गाथा' ही प्राचीन छन्द है और उसी को संस्कृत भाषा में लाकर 'आर्या' नाम दिया गया है। इसकी उत्पत्ति के विषय में जो कुछ कहा गया, परन्तु इतना कहना ही पड़ता है कि गोवर्धनाचार्य 'आर्या' के आचार्य हैं। ऐसी सुन्दर आर्याएँ न तो उनके पहले ही किसी कवि ने लिखीं और पीछे ही। उनकी आर्या में नैसर्गिक प्रवाह है—बहुत ही सुन्दर तथा सरस पदयोजना है। गोवर्धनाचार्य की यह उक्ति नितान्त उपयुक्त है :—

मसृणपदरीतिगतयः सज्जनहृदयानि सारिकाः सुरसाः ।
मदनाद्वयोपनिषदो विशदा गोवर्धनस्यार्याः ॥
(आर्यासप्तशती ५१)

त्रिष्वंशकेषु पादो दलयोराद्येषु दृश्यते यस्याः ।
पथ्येति नाम तस्याः प्रकीर्तितं नागराजेन ॥ ३ ॥

अत्र आर्यायाः काश्चिद् विशेषां दर्शयितुमाह—यस्याः आर्यायाः दलयोः उभयोरपि भागयोः पूर्वार्धोत्तरार्धयोः आद्येषु त्रिषु अंशकेषु त्रिषु चतुष्कलात्मकेषु गणेषु पादः चरणो दृश्यते नागराजेन पिङ्गलाचार्येण तस्याः नाम पथ्या इति प्रकीर्तितम् । यस्यामार्यायां द्वादशमात्रात्मकौ प्रथमतृतीयौ पादौ भवतः सा पथ्याभिधीयते, इति सरलार्थः ॥

भावार्थ—अब ग्रन्थकार आर्या के प्रधान भेद दिखलाते हैं। सबसे पहले 'पथ्या' का लक्षण दिया है। जिस आर्या के पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध में आरम्भ के तीन गणों के अन्त में एक पाद होता है, उसे नागराज **पथ्या** कहते हैं। तीन गण बारह मात्रा के होंगे। अतः जहाँ प्रथम पाद तथा तृतीय पाद १२ मात्राओं के होंगे, उस आर्या को पथ्या कहेंगे। यथा—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ गु०
जय जय जगदीश विभो, केशव कंसान्त माधवानन्त ।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ गु०
कुरु करुणामिति भणितिः, पथ्या भवरोग दुःस्थानाम् ॥
—छन्दोमञ्जरी

यह आर्या है क्योंकि प्रथमार्ध में ७ गण तथा गुरु है, द्वितीयार्ध में छठा गण (ग) लघु है। अन्य लक्षण प्रथमार्ध के समान है। यहाँ पूर्वार्ध के तीसरे गण पर ('भो' तक) पहला पाद समाप्त होता है तथा उत्तरार्ध के भी तीसरे पर ('तिः' तक) तीसरा चरण समाप्त होता है। अतः यहाँ **पथ्या** है ॥ ३ ॥

संलङ्घ्य गणत्रयमादिमं शकलयोर्द्वयोर्भवति पादः ।
यस्यास्तां पिङ्गलनागो विपुलामिति समाख्याति ॥ ४ ॥

यस्या आर्यायाः द्वयोः शकलयोः उभयोरपि भागयोः पूर्वार्धोत्तरार्धयोः व्यस्तयोः समस्तयोर्वा आदिमं प्रारम्भस्थितं गणत्रयं संलङ्घ्य लंघयित्वा पादो

भवति, पिङ्गलनागः छन्दःशास्त्रप्रणेताऽऽचार्यः तामार्यां विपुलामिति समाख्याति कथयति ।

भावार्थ—जिस आर्या के पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध में आदि के तीन गणों को लाँघकर—आगे बढ़कर—पाद हो, उसे पिंगलाचार्य **'विपुला'** नाम से पुकारते हैं। पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध दोनों में यह लक्षण घटे अथवा किसी एक ही में लक्षण मिले दोनों दशाओं में वह 'विपुला' ही कहलावेगा ।

उदाहरण—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ गु०

या स्त्रीकुचकलशनितम्बमण्डला जायते महाविपुला ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ गु०

गम्भीरनाभिरतिदीर्घलोचना भवति सा सुभगा ॥

—छन्दोवृत्ति

इस आर्या में प्रथम पाद तीसरे गण (तं) पर समाप्त नहीं होता, बल्कि उसके आगे बढ़कर 'ला' पर समाप्त होता है। उसी प्रकार तीसरा पाद तीसरे गण (दी) को लाँघकर 'ना' पर समाप्त होता है। अतः यह आर्या **विपुला** है ॥ ४ ॥

उभयार्धयो र्जकारो द्वितीयतुर्यौ गमध्यगौ यस्याः ।
चपलेति नाम तस्याः प्रकीर्तितं नागराजेन ॥ ५ ॥

यस्याः आर्यायाः उभयार्धयोः पूर्वार्धे उत्तरार्धे च द्वितीयतुर्यौ द्वितीयचतुर्थौ गमध्यगौ मध्यगुरुसम्पन्नौ जगणौ भवतः, नागराजेन पिङ्गलमुनिना तस्याः 'चपला' इति नाम प्रकीर्तितं कथितम् ।

भावार्थ—जिसे आर्या के दोनों दलों में—पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध में—दूसरा तथा चौथा गण जगण (। ऽ ।) होता है, उसे नागराज **'चपला'** कहते हैं।

उदाहरण—

१ २ जगण ३ ४ जगण ५ ६ ७ गु०

चपला न चेत् कदाचिन्नृणां भवेद्भक्तिभावना कृष्णे ।

१ २ जगण ३ ४ जगण ५ ६ ७ गु०

धर्मार्थकाममोक्षास्तदा करस्था न सन्देहः ॥

इस आर्या के पूर्वार्ध में दूसरा (न चेल्क) तथा चौथा (नृणां भ) गण जगण (मध्यगुरु) है तथा उत्तरार्ध में भी (र्थकाम) तथा चौथा (स्तदाक) गण जगण है। अतः यह आर्या **चपला** है ॥ ५ ॥

आद्यं दलं समस्तं भजते लक्ष्म चपलागतं यस्याः।
शेषे पूर्वज लक्ष्मा मुखचपला सोदिता मुनिना ॥ ६ ॥

यस्या आर्यायाः आद्यं दलं प्रथमार्धमिति यावत् चपलागतं चपलानिष्ठं लक्ष्म लक्षणं भजेत धारयेत, शेषे अन्त्यदले उत्तरार्धे पूर्वज लक्ष्मा पूर्वजं आर्या सामान्यभवं लक्ष्मं यस्या सा आर्या मुनिना पिंगलेन मुखचपला उदिता कथिता। मुखे आदौ चचलेति अन्वर्थिकेयं संज्ञा मुख चपलेति।

भावार्थ—जिस आर्या के पूर्वार्ध में चपला का लक्षण मिले (अर्थात् दूसरे तथा चौथे स्थान में जगण हो) तथा उत्तरार्ध में आर्या का सामान्य लक्षण मिले उसे पिंगल मुनि मुखचपला कहते हैं। यह आर्या के मुख में—आदि में—चपला है। अतः इसका **मुखचपला** नाम विल्कुल उचित है।

उदाहरण—

१ २ जगण ३ ४ जगण ५ ६ ७ गुरु
नन्दसुत ! वञ्चकस्त्वं दृढं न ते प्रेम गच्छ तत्रै-व ।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ गुरु
यत्र भवति ते रागः कापि जगादेति मुखचपला ॥

इस आर्या के पूर्वार्ध में दूसरे (तवञ्च) तथा चौथे (दृढं न) स्थान में मध्यगुरु जगण है। अतः पूर्वार्ध में यह 'चपला' हुई। परन्तु उत्तरार्ध में आर्या का सामान्य लक्षण मिलता है। अतः यह **मुखचपला** है ॥ ६ ॥

प्राक् प्रतिपादितमर्धे प्रथमे, प्रथमेतरे च चपलायाः।
लक्ष्माश्रयेत सोक्ता विशुद्धधीभिर्जघनचपला ॥ ७ ॥

प्रथमे अर्धे पूर्वार्धे प्राक् प्रतिपादितं पूर्वकथितं लक्ष्म आर्यायाः सामान्य लक्षणं भवति। तथा प्रथमेतरे द्वितीयार्धे चपलायाः लक्ष्म लक्षणं आश्रयेत सा विशुद्धधीभिः विशुद्धा विवेकविमला धीः बुद्धिः येषां तैः पिङ्गलादिभिराचार्यैः जघनचपला जघने अन्ते उत्तरार्धे चपलेति हेतुत्वात् जघनचपला कथिता।

भावार्थ—जिसके पूर्वार्ध में आर्या का सामान्य लक्षण हो तथा उत्तरार्ध में चपला का लक्षण मिले, (अर्थात् उत्तरार्ध के दूसरे तथा चौथे गण जगण

हों) तो उस आर्या को विशुद्धबुद्धि वाले आचार्य लोग **जघनचपला** के नाम से पुकारते हैं। अन्त्यार्ध में चपला होने से जघनचपला नाम सार्थक ही है।

उदाहरण—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ गु०

कृष्णः शृङ्गार पटुर्यौवनमदरागचपलललिताङ्गः।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ गु०

आसीद् व्रजाङ्गनानां मनोहरो जघनचपलानाम् ॥

इस छन्द के पूर्वार्ध में आर्या का लक्षण (सप्तगण तथा गुरु) मिलता है। परन्तु उत्तरार्ध में चपला का, क्योंकि उसमें दूसरे (व्रजाङ्ग–) तथा चौथे (मनोह–) स्थान में मध्य गुरु जगण है। अतः इसे जघनचपला आर्या समझना चाहिए ॥ ७ ॥

नोट—आर्या का प्रकरण यहाँ समाप्त होता है। अब इसके भेदों पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। आर्या के १६ भेद होते हैं। संक्षेप में हलायुध ने इनका उल्लेख किया है—

एकैव भवति पथ्या तिस्रो विपुलास्ततश्चतस्रस्ताः।
चपलाभेदैस्त्रिभिरपि भिन्ना इति षोडशार्याः स्युः ॥

पथ्या—एक प्रकार की ही होती है।

विपुला तीन प्रकार की होती है —(१) **मुखविपुला**, जिसके पूर्वार्ध में ही केवल आदिम तीन गणों को लाँघ कर पाद हों। (२) **जघनविपुला**, जिसके उत्तरार्ध में शुरू के तीन गणों के आगे पादविराम हो। (३) **उभय-विपुला**, जिसके दोनों दलों में 'विपुला' हो। पथ्या के साथ मिल कर ये चार भेद हुए।

चपला के तीन भेद होते हैं—(१) **मुखचपला**, जिसके पूर्वार्ध में चपला हो। (२) **जघनचपला**, जिसके उत्तरार्ध में चपला का लक्षण मिले। (३) **महाचपला**, जहाँ दोनों दलों में चपला हो। चपला के इन तीनों भेदों में पथ्यादिक चार-चार भेद होंगे। इस प्रकार १२ भेद हुए। इनमें पथ्या तथा त्रिविधविपुला को जोड़ने से (१२+४=१६) १६ भेद सम्पन्न होते हैं। सुभीते के लिए वे सब भेद नीचे दिये जाते हैं :—

(१) पथ्या, (२) मुखविपुला, (३) जघनविपुला, (४) उभयविपुला (५) मुखचपलापथ्या, (६) मुखचपलामुखविपुला, (७) मुखचपला-जघनविपुला, (८) मुखचपलोभयविपुला, (९) जघनचपला पथ्या, (१०) जघनचपलामुखविपुला, (११) जघनचपलाजघनविपुला, (१२) जघन-चपलोभयविपुला, (१३) महाचपलापथ्या, (१४) महाचपलामखविपुला, (१५) महाचपलाजघनविपुला, (१६) महाचपलोभयविपुला ।

गीतिं लक्षयति

आर्याप्रथमदलोक्तं यदि कथमपि लक्षणं भवेदुभयोः ।
दलयोः कृतयतिशोभां तां गीतिं गीतवान् भुजङ्गेशः ॥ ८ ॥

यदि उभयोः दलयोः पूर्वार्धोत्तरार्धयोः आर्याप्रथमदलोक्तं आर्यापूर्वार्धगतं गुरुयुक्तसप्तगणात्मकं लक्षणं कथमपि विकल्पितषष्ठजगण चतुर्लघुगणान्यतमप्रकारा-श्रयेणापि भवेत्, तदा कृतयतिशोभां कृता सम्पादिता यतिभिः विच्छेदैः शोभा श्रुतिसौभाग्यं यस्याः तां भुजङ्गेशः पिङ्गलो मुनिः गीतिं गीतवान् "आद्यर्धसमा गीतिः" इति (पिङ्गलसूत्र ४।२८) सूत्रेणेति भावः । अत्रोभयोः दलयोः (३०) त्रिंशन्मात्राः । तथाऽऽर्यामिव गणविशेषेषु सत्सु विरामविशेषा अत्रापि भवन्तीति नूनमवगन्तव्यम् ।

भावार्थ—जिसके दोनों दलों में आर्या के पूर्वार्ध का लक्षण किसी तरह मिले अर्थात् पूर्वार्ध की तरह उत्तरार्ध में भी ७ गण तथा गुरु हों तो यति के कारण श्रोत्रसुखद उस छन्द को नागराज **गीति** छन्द कहते हैं । 'कथमपि' का यह अभिप्राय है जिस प्रकार आर्या के पूर्वार्ध में छठा गण कहीं जगण होता है और कहीं चार लघु, उसी प्रकार यहाँ भी वह हो सकता है । विशिष्ट गणों के रखने पर जिस प्रकार आर्या में यति का नियम है इसी प्रकार गीति में भी वह नियम लगता है । इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिए ।

उदाहरण—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ गु०
केशववंशजगीतिर्लोकमनोहरिणहारिणी जयति ।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ गु०
गोपीमानग्रन्थेर्विमोचनी दिव्यगायनाश्चर्या ॥ (छन्दोमञ्जरी)

यहाँ पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध में ७ गण तथा १ गुरु है । अतः यह गीति है ।८।

उपगीतिलक्षण

आर्याद्वितीयकेऽर्धे यद् गदितं लक्षणं तत् स्यात् ।
यद्युभयोरपि दलयोरुपगीतिं तां मुनिर्ब्रूते ॥ ९ ॥

उपगीतिं लक्षयति—आर्यायाः द्वितीयकेऽर्धे उत्तरार्द्धे यत् लक्षणं गदितमुक्तं तत् लक्षणं यदि उभयोरपि दलयोः अर्धयोः स्यात्, मुनिः पिङ्गलः तां उपगीतिं ब्रूते कथयति "अन्त्येनोपगीतिः" इति (पिं० सू० ४।२९) सूत्रेणेति भावः ।

भावार्थ—जिस छन्द के दोनों दलों ने आर्या के उत्तरार्ध का लक्षण मिले अर्थात् गुरु के साथ ७ गण हों, जिनमें छठा केवल लघु हो, तो पिंगल मुनि उसे **उपगीति** कहते हैं ।

उदाहरण—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ गु०
नवगोपसुन्दरीणां रासोल्लासे मुराराातिम् ।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ गु०
अस्मारयदुपगीतिः स्वर्गकुरङ्गीदृशां गीतेः ॥

—छन्दोमञ्जरी

इस छन्द के दोनों भागों में सात गण हैं तथा अन्त में गुरु है छठा गण लघु है—पूर्वार्ध में (मु) तथा उत्तरार्ध में (दृ) भी छठा लघु है । अतः यह उपगीति है ॥ ९ ॥

आर्याशकलद्वितयं व्यत्ययरचितं भवेद् यस्याः ।
सोद्गीतिः किल गदिता तद्वद् यत्यंशभेदसंयुक्ता ॥ १० ॥

आर्याशकलद्वितयं आर्याखण्डद्वयं यस्याः व्यत्ययरचितं व्यत्ययेन विपर्यासेन रचितं भवेत् । आर्यायाः पूर्वार्धं यस्या उत्तरार्धं भवेत्, आर्याया उत्तरार्धं च यस्याः पूर्वार्धं भवेत् । सा उद्गीतिः गदिता उक्ता भवति । तद्वत् तत्तुल्यं यत्यंशभेदसंयुक्ता यत्या विच्छेदेन योंऽशभेदः पादभेदः तेन संयुक्ता भवति ।

भावार्थ—आर्या के दोनों खण्ड जिसमें उलट कर रखे जाँय, अर्थात् आर्या का पूर्वार्ध जिसमें उत्तरार्ध हो तथा आर्या का उत्तरार्ध जिसमें पूर्वार्ध हो उसे **उद्गीति** कहते हैं । आर्या की तरह यहाँ भी यति के कारण चरणों का विधान होता है । अतः आर्या के जितने भेद होते हैं, वे सब यहाँ भी होते हैं ।

उदाहरण—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ गु०

नारायणस्य सन्ततमुद्गीतिः संस्मृतिर्भक्त्या ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ गु०

अर्चायामासक्तिर्दुस्तरसंसारसागरे तरणिः ॥

—छन्दोमञ्जरी

इस छन्द के पूर्वार्ध में ७ गण हैं। जिनमें छठा केवल १ लघु (स्मृ) है तथा अन्त में गुरु है—यह आर्या के उत्तरार्ध में होता है। उत्तरार्ध में ७ गण तथा गुरु हैं, जो आर्या के पूर्वार्ध में पाये जाते हैं। अतः इसे उद्गीति कहेंगे ।१०।

आर्यापूर्वार्धं यदि गुरुणैकेनाधिकेन निधने युक्तम् ।
इतरत् तद्वन्निखिलं भवति यदीयमर्धमुदितार्या गीतिः ॥ ११ ॥

यदि आर्यापूर्वार्धं निधने अवसाने एकेन अधिकेन गुरुणा युक्तं भवेत्, इतरत् द्वितीयं यदीयं उत्तरार्धं निखिलं तद्वत् पूर्वार्धवत् भवति सा आर्यागीतिः कथिता। आर्यायाः पूर्वार्धे एकेन गुरुणोपेता सप्तगणाः भवन्ति। आर्यागीत्यां तु पूर्वार्धे उत्तरार्धे उभयोरपि पूर्णा अष्टौ गणा भवन्ति। आर्यायाः पूर्वार्धे (३०) त्रिंशन्मात्रा विद्यन्ते, आर्यागीत्यास्तु उभयोरपि दलयोः (३२) द्वात्रिंशन्मात्रा सन्तीत्युभयोर्भेदनिर्देशः।

भावार्थ—यदि आर्या के पूर्वार्ध के अन्त में १ गुरु और अधिक हो, तो उसी प्रकार का जिसका उत्तरार्ध भी हो उसे **आर्यागीति** कहते हैं। आर्या के पूर्वार्ध में ७ गण तथा १ गुरु होते हैं। उसमें १ गुरु जोड़ने पर पूरे ८ गण हो जायेंगे। ये आठ गण जिसके दोनों दलों में हों, उसे **आर्यागीति** कहते हैं।

उदाहरण—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

हर्षाश्रुस्तिमितदृशः प्रमोदरोमाञ्चकञ्चुकाञ्चितदेहाः ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

आर्यागीतिं भक्ता गायन्ति श्रीपतेश्चरितसम्बद्धाम् ॥

यहाँ पूर्वार्ध में तथा उत्तरार्ध में दोनों खण्डों में पूरे-पूरे ८ गण हैं। अतः यह आर्यागीति है ॥ ११ ॥

नोट—पहले दिखलाया गया है कि आर्या के १६ भेद होते हैं। वे भेद यहाँ भी होंगे। गीति प्रकरण में गीति, उपगीति, उद्गीति तथा आर्यागीति ये चार छन्द वर्णित हैं। आर्या के समान प्रत्येक के सोलह भेद होंगे। उनके नाम वे ही हैं जो आर्या प्रकरण में दिखलाये गये हैं। इस प्रकार आर्या के ८० भेद होते हैं। (मुख्य आर्या भेद १६ + गीति १६ + उपगीति १६ + उद्गीति १६ + आर्यागीति १६ = ८० आर्या)। हलायुध ने ठीक ही कहा है—

गीतिचतुष्टयमित्थं प्रत्येकं षोडशप्रकारं स्यात्।
साकल्येनार्याणामशीतिरेवं विकल्पाः स्युः ॥

(इति गीतिप्रकरणम्)

वैतालीयप्रकरणम्

षड् विषमेऽष्टौ समे कलास्ताश्च समे स्युर्नो निरन्तराः।
न समात्र पराश्रिता कला वैतालीयेऽन्ते रलौ गुरुः ॥ १२ ॥

प्रकृतत्वात् वैतालीयं लक्षयति—वैतालीये छन्दसि विषमे चरणे अर्थात् प्रथमे तृतीये च पादे षड् कलाः मात्राः भवन्ति तथा समे पादे अर्थात् द्वितीये तुर्ये च चरणे अष्टौ कलाः भवन्ति। तथा अन्ते उक्तानां कलानामन्ते रलौ रगणश्च (ऽ। ऽ) लघुश्च गुरुश्च भवन्तीति। इत्थं वैतालीयस्य प्रथमतृतीययोः पादयोः (१४) चतुर्दशकला भवन्ति, द्वितीय चतुर्थयोस्तु (१६) षोडश इति संक्षिप्तार्थः। तत्रान्तिमानामष्टानां मात्राणां उभयोरपि दलयोः समाना व्यवस्थितिः। ताः रगण-लघु-गुरुभिः सम्पादनीयाः। आद्यानां कलानां निवेशने नियममाह—ताश्च समे स्युर्नो निरन्तराः। समे पादे ताः षट्कला निरन्तराः लघवः नो स्युः। ताः गुरुमिश्रिताः कार्या इति भावः। समे एव नियमात् विषमे यथेच्छं कर्तव्याः। अत्राद्यासु षट् मात्रासु विषमे पादे तथा अष्टसु मात्रासु समपादे समा द्वितीया तुर्या षष्ठी च कला पराश्रिता परया तृतीयपञ्चमसप्तम्या आश्रिता युक्ता न भवति। अर्थात् द्वितीया कला तृतीयया मिलिता न भवति तथैव तुर्या पञ्चम्या षष्ठी च सप्तम्या लगिते न भवतः। पूर्वाश्रिता भवितुमर्हन्ति न तु पराश्रिता इति भावः।

भावार्थ—वैतालीय छन्द के विषम—प्रथम तथा तृतीय पाद में ६-६

मात्राएँ होती हैं तथा सम-द्वितीय तथा चतुर्थ-पाद में ८-८ मात्राएँ रहती हैं। इन मात्राओं के अन्त में दोनों जगह रगण (मध्यलघु ऽ।ऽ), लघु तथा गुरु होते हैं। विषम पाद की आदिम ६ मात्राओं के सन्निवेश के विषय में कोई नियम नहीं है परन्तु समपाद में नियम है। सम चरण में ६ आदि के मात्राएँ मिश्रित रहती हैं। एक अन्य नियम का उल्लेख तीसरे चरण में किया गया है—न समात्र पराश्रिता कला।

विषम पाद की आरम्भिक ६ मात्राओं तथा समपाद की ८ मात्राओं के रखने में नियम यह है कि समा कला आगे वाली कला से युक्त न होनी चाहिए। सम कला से मतलब है दूसरी, चौथी तथा छठी मात्राओं से। ये मात्राएँ आगे की मात्रा में मिली नहीं रहेंगी अर्थात् दूसरी मात्रा तीसरी से मिली नहीं होनी चाहिए। इसी प्रकार चौथी पाँचवी से न मिले, न छठी साँतवी से। 'पराश्रिता' कहने से यह आशय है कि ये पूर्वाश्रिता हो सकती हैं अर्थात् दूसरी मात्रा पहली से, चौथी तीसरी से, छठी पाँचवी में मिली हो सकती हैं परन्तु परकला से आश्रित कभी नहीं हो सकती।

उदाहरण—

६ कला रगण ल. गु. ८ कला रगण ल. गु.

घुसृणेन मदेन चर्चितं, तव यन्निन्दति राधिके कुचम्।

६ कला रगण ल. गु. ८ कला रगण ल. गु.

मुदमातनुतेऽत्र पाकिनं, तद् वैतालीयं फलं ह-रेः ॥

यहाँ प्रथम तथा तृतीय पाद में ६ कला आदि में हैं; उनके आगे रगण लघु तथा गुरु है। एवं द्वितीय तथा चतुर्थ पाद में ८ मात्राएँ आदि में हैं, अन्त में रगण लघु तथा गुरु है। समपाद में आदिम ६ मात्राएँ केवल लघु नहीं है बल्कि दीर्घ से मिश्रित हैं यहाँ प्रथम पाद में द्वितीय मात्रा 'सृ' किसी के आश्रित नहीं है, चौथी मात्रा 'णे' पाँचवीं से मिली नहीं है, प्रत्युत तीसरी से मिली हुई है; छठी मात्रा 'म' भी स्वतन्त्र है। इसी प्रकार अन्य पादों में भी समबला पराश्रित नहीं है। जिज्ञासु जन इसकी परीक्षा स्वयं करें।

पर्यन्ते र्यौ तथैव शेषमौपच्छन्दसिकं सुधीभिरुक्तम् ॥

विषमपादयोः षण्णामन्ते तथा समपादयोरष्टानां मात्राणामन्ते र्यौ रगणयगणौ भवतः शेषं तथैव वैतालीयवत् यदि स्यात् तदा सुधीभिः प्राज्ञैः औपच्छन्दसिकं

नाम छन्दः उक्तं कथितम् । वैतालीयच्छन्दसि अन्ते यदि एको गुरुरधिको भवति तदा औपच्छन्दसिकं नाम च्छन्दः । वैतालीये विषमे १४ मात्राः, समे १६ मात्राः, अस्मिस्तु विषमे १६ मात्राः समे अष्टादश १८ मात्रा इत्युभयोः मिथः पार्थक्यम् ।

भावार्थ—यदि विषमपाद में ६ मात्राओं के बाद तथा समपाद में ८ मात्राओं के बाद रगण (मध्य लघु) तथा यगण (आदिलघु) हो और अन्य लक्षण वैतालीय के भाँति हो, तो पण्डित लोग उसे **औपच्छन्दसिक** छन्द कहते हैं। संक्षेप में इसका लक्षण यही है कि वैतालीय के अन्त में एक-एक गुरु जोड़ दीजिये और औपच्छन्दसिक बन जायगा। दोनों छन्दों में अन्तर भी स्पष्टती है—

वैतालीय	विषमपाद	१४ मात्रा, समपाद	१६ मात्रा
औपच्छन्दसिक	विषमपाद	१६ मात्रा, समपाद	१८ मात्रा

उदाहरण—

६ मा. र. य. ८ मा. र. य.

वाक्यैर्मधुरैः प्रतार्य पूर्वं यः पश्चादभि सन्दधाति मित्रम् ।

६ मा. र. य. ८ मा. र. य.

तं दुष्टमतिं विशिष्टगोष्ठ्यामौपच्छन्दसिकं वदन्ति बाह्या ॥

—छन्दोवृत्ति

पूर्वोक्त लक्षण इसमें पूरे तौर से घटता है। अतः यह औपच्छन्दसिक छन्द हुआ ॥ १० ॥

आपातलिका कथितेयं भाद् गुरुकावथ पूर्ववदन्यत् ॥ १४ ॥

षण्णां अष्टानाञ्च कलानामन्ते भाद् भगणाद् गुरुकौ द्वौ गुरू भवतः अन्यत् सर्वं पूर्ववत् वैतालीयवत् स्यात् सेयं आपातलिका सुधीभिः कथिता ।

भावार्थ—यदि छ तथा आठ मात्राओं के अन्त में यदि आदि गुरु भगण (ऽ ।) हो तथा उसके बाद दो गुरु विद्यमान हों। अन्य लक्षण वैतालीय के समान हो, तो इसे '**आपातलिका**' कहते हैं। वैतालीय के अन्त में यगण, लघु, गुरु होता है, यहाँ भगण, गुरु, गुरु—मात्राएँ बराबर (८) है; परन्तु उनका सन्निवेश दोनों में भिन्न प्रकार से है। यही दोनों में अन्तर है ॥ १४ ॥

उदाहरण—

६ मा. भ. गु. गु. ८ मा. भ. गु. गु.

पिङ्गलकेशी कपिलाक्षी, वाचाटा विकटोन्नतदन्ती ।

६ मा. भ. गु. गु. ८ मा. भ. गु. गु.

आपातलिका पुनरेषा नृपति कुलेऽपि न भाग्यमुपैति ॥

तृतीययुग् दक्षिणान्तिका समस्तपादेषु द्वितीयलः ॥ १५ ॥

समस्तपादेषु चतुर्षु अपि चरणेषु द्वितीयलः द्वितीया मात्रा तृतीययुग् तृतीयया संयुक्ता भवति चेत् तदा दक्षिणान्तिका नाम भवति । चेत्, तदा शब्दौ अध्याहार्यौ । वैतालीये द्वितीया कला प्रथमया युक्ता भवति, अस्यां तु तृतीयेत्युभयोर्भेदः । वैतालीये यदा द्वितीया कला दीर्घा भवति, तदा दक्षिणान्तिका छन्दो नामेति भावः ।

भावार्थ—यदि चारों पादों में दूसरी मात्रा तीसरी मात्रा से मिली रहे अर्थात् सदा दीर्घ रहे तब **दक्षिणान्तिका** छन्द होता है । केवल दूसरी मात्रा दीर्घ रहेगी. और लक्षण वैतालीय के समान होगा । दोनों में अन्तर यही है कि वैतालीय में दूसरी मात्रा पहली से मिली रहती है और यहाँ तीसरी से ।

उदाहरण—

६ मा. र. ल. गु. मा. र. ल गु.

। ऽ । ऽ ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ ऽ ऽ । ऽ । ऽ

महीभजां श्रेष्ठ इत्यसौ निगद्यते तैर्नीतिवेदिभिः ।

६ मा. र. ल. गु. ८ मा. र. ल. गु.

। ऽ । ऽ ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ ऽ ऽ । ऽ । ऽ

श्रुतेन शीलेन संयतै-स्तथैव लङ्कालोचनो नृपः ॥

उदीच्यवृत्तिर्द्वितीयलः सक्तोऽग्रेण भवेदयुग्मयोः ॥ १६ ॥

यदा अयुग्मयोः विषमयोः पादयोः द्वितीयलः द्वितीया मात्रा अग्रेण तृतीयया सह सक्तो युक्तो भवति, तदा उदीच्यवृत्तिर्नाम छन्दो भवति । अत्रापि द्वितीया मात्रा प्रथम-तृतीयपादयोः दीर्घा भवति, अन्यत् सर्वं वैतालीयवत् स्यात् ।

भावार्थ—यदि विषमपादों में दूसरी मात्रा अपने आगे वाली अर्थात् तीसरी मात्रा से युक्त रहे, तो उसे **उदीच्यवृत्ति** कहते हैं। यहाँ प्रथम तथा तृतीय चरण में दूसरी मात्रा दीर्घ होगी, बाकी सब वैतालीय की तरह होगा।

उदाहरण—

६ मा. र ल. गु. ८ मा. र. ल. गु.

अवाचकमनूर्जिताक्षरं श्रुतिदुष्टं यतिदुष्टमक्रमम्।

६ मा. र. ल. गु. ८ मा. र. ल. गु.

प्रसादरहितं च नेष्यते, कविभिः काव्यमुदीच्यवृत्तिभिः॥

इस वैतालीय छन्द में प्रथम पाद में 'वा' अक्षर में दीर्घ है अर्थात् यहाँ दूसरी तथा तीसरी मात्राएँ एक साथ मिली हैं। इसी प्रकार तीसरे पाद का 'सा' वर्ण दीर्घ है। यहाँ भी दूसरी तीसरी मात्राएँ मिली हैं। अतः यह उदीच्यवृत्ति छन्द है॥ १६॥

पूर्वेण युतोऽथ पञ्चमः प्राच्यवृत्तिरुदितेति युग्मयोः॥ १७॥

अथ युग्मयोः समपादयोः पञ्चमो लः पूर्वेण चतुर्थेन लघुना युतो यदि भवति, तदा प्राच्यवृत्तिः उदिता गदिता। अत्र चतुर्थपञ्चममात्रे एकेन गुरुणा उपात्ते भवतः। अन्यत् सर्वं वैतालीयवत् भवति।

भावार्थ—यदि युग्म दल में—द्वितीय तथा चतुर्थ चरणों में पाँचवीं मात्रा अपने पूर्व की अर्थात् चौथी मात्रा से मिली हो, तो प्राच्यवृत्ति छन्द कहते हैं। यहाँ एक ही गुरु के द्वारा चौथी तथा पाँचवी मात्राओं का ग्रहण होगा। बाकी लक्षण वैतालीय के होंगे।

उदाहरण—

६ मा. र. ल. गु. ८ मा. र. ल. गु.

विपुलार्थसुवाचकाक्षराः कस्य नाम न हरन्ति मानसम्।

६ मा० र० ल. गु. ८ मा. र. ल. गु.

रसभावबिशेषपेशलाः प्राच्यवृत्तिकविकाव्यसम्पदः॥

—छन्दोवृत्ति

इस वैतालीय के दूसरे पाद में दीर्घ 'ना' के द्वारा चौथी तथा पाँचवीं मात्राएँ ग्रहीत होती हैं। चौथे चरण के संयोग पूर्वपरक अत एव दीर्घ 'वृ'

(वृत्ति) के द्वारा चौथी तथा पाँचवीं मात्राएँ प्रकटित की जाती हैं। अतः यह प्राच्यवृत्ति छन्द है ॥ १७ ॥

यदा समावोजयुग्मकौ पूर्वयोर्भवति तत् प्रवृत्तकम् ॥ १८ ॥

यदा ओजयुग्मकौ विषमसमपादौ पूर्वयोः उदीच्यवृत्तिप्राच्यवृत्योः समौ तुल्यौ स्यातां, तत् प्रवृत्तकं नाम छन्दो भवति । प्रवृत्तकस्य विषमपादयोः उदीच्यवृत्तिवत् द्वितीयतृतीयमात्रायोगो भवति समपादयोस्तु प्राच्यवृत्तिवत् चतुर्थपञ्चममात्रासंयोगो भवति । अन्यत् सर्वं वैतालीयवद् ज्ञेयम् ।

भावार्थ—जिसके विषम तथा समपाद क्रम से उदीच्यवृति तथा प्राच्यवृत्ति के तुल्य हों, उसे **प्रवृत्तक** कहते हैं। उदीच्यवृत्ति के समान प्रवृत्तक के विषमदल में दूसरी तथा तीसरी मात्रा का संयोग अवश्य रहेगा, परन्तु समदल में (द्वितीय तथा चतुर्थ पाद में) प्राच्यवृत्ति के भाँति चौथी तथा पाँचवीं मात्राएँ आपस में मिली होंगी।

उदाहरण—

६ मा. र. ल. गु. ८ मा. र. ल. गु.

इदं भरतवंशभू-भृता, श्रूयतां श्रुतिमनो रसायनम् ।

६ मा. र. ल. गु. ८ मा. र. ल. गु.

पवित्रमधिकं शुभोदयं, व्यासवक्त्रकथितं प्रवृत्तकम् ॥

—छन्दोवृत्ति

इस छन्दके प्रथम तथा तृतीय चरण में द्वितीय तथा तृतीय मात्राएँ मिली हैं ('दं' तथा संयोग परक 'वि') तथा दूसरे पाद के 'तां' तथा चौथे संयोग-परक 'व' में चौथी तथा पाँचवीं मात्राएँ आपस में मिली हैं। अतः यह **'प्रवृत्तक'** नामक छन्द हुआ ।। १८ ।।

अस्य युग्म रचिताऽपरान्तिका ॥ १९ ॥

अस्य प्रवृत्तकस्य युग्मरचिता युग्मपादेन विरचिता सर्वेषु पादेष्विति भावः अपरान्तिका भवति । यत्र चतुर्ष्वपि चरणेषु चतुर्थपञ्चममात्रयोः संयोगो दृश्यते तथा सर्वत्र षोडशमात्रता च जायते, तदा अपरान्तिका नाम छन्दः । इदं वैतालीयौपछन्दसिकापातलिकापूर्वत्वेन त्रेधा ।

भावार्थ—प्रवृत्तक के युग्मपादों में १६-१६ मात्राएँ होती हैं तथा चौथी और पाँचवीं मात्राओं का योग रहता है। वही प्रकार अर्थात् षोडशमात्रता तथा

चतुर्थपञ्चम मात्रायोग यदि चारों चरणों में पाया जाय, तो वह छन्द **अपरान्तिका** कहलाता है ।

उदाहरण—

८ मा. र. ल. गु. ८ मा. र. ल. गु.

स्थिरविलासनतमौक्तिकावली कमलकोमलाङ्गी मृगेक्षणा ।

८ मा. र. ल. गु. ८ मा. र. ल. गु.

हरतिकस्यहृदयं न कामिनः सुरतकेलिकुशलाऽपरान्तिका ।।

यहाँ चारों चरणों में पहले ८ मात्राएँ, पीछे रगण, लघु, गुरु हैं इस प्रकार ८ मात्राएँ हैं । चारों पादों में चौथी तथा पाँचवीं मात्राएँ संयुक्त हैं अर्थात् दीर्घ स्वर के द्वारा प्रकट की गई है । पहले पाद में—'ला', दूसरे में 'को', तीसरे में संयोग परक 'क' तथा चौथे में 'के' हैं । अतः यह अपरान्तिका है ।। १९ ।।

अयुग्भवा चारुहासिनी ।। २० ।।

अस्य प्रवृत्तकस्य अयुग्भवा अयुग्मैः विषमैः पादै रचिता चारुहासिनी नाम छन्दो भवति । प्रवृत्तकस्य विषमदले चतुर्दशमात्राः सन्ति, द्वितीयतृतीयमात्रयोः संयोगश्च भवति । सर्वेष्वपि चरणेषु इत्यंभूतेन लक्षणेन लक्षितेषु, चारुहासिनी भवति । सा पूर्ववत् त्रेधा ।

भावार्थ—प्रवृत्तक के विषम पाद से जो छन्द बना हो, उसे चारुहासिनी कहते हैं । प्रवृत्तक के विषमपाद में १४-१४ मात्राएँ होती हैं तथा दूसरी और तीसरी मात्राओं का योग रहता है । यदि ऐसा लक्षण सब पादों में मिले, विषम दल में ही नहीं, बल्कि समदल में भी चतुर्दशमात्रता तथा द्वितीयतृतीयमात्रा-योग रहे तो चारुहासिनी होती है ।

उदाहरण—

६ मा. र. ल. गु. ६ मा. र. ल. गु.

मनाक् प्रसृतदन्तदीधितिः स्मरोल्लसित गण्डमण्डला ।

६ मा. र. ल. गु. ६ मा. र. ल. गु.

कटाक्षललिता तु कामिनी मनोहरति चारुहासिनी ।।

यहाँ चारों चरणों में ६ मात्रा, रगण, लघु तथा गुरु है—सबके गिनने पर १४-१४ मात्राएँ होती हैं । सर्वत्र दूसरी तथा तीसरी मात्रा जुड़ी हैं—पहले में

'ना', दूसरे में 'रो' तीसरे में 'टा', चौथे में 'नो'—दीर्घ स्वर के द्वारा दूसरी तथा तीसरी मात्राएँ प्रकट की जाती हैं ।

इति वैतालीयप्रकरणम्

अथ वक्त्रप्रकरणम्

वक्त्रम्

वक्त्रं नाद्यान्नसौ स्यातामब्धेर्योऽनुष्टुभि ख्यातम् ॥ २१ ॥

वक्त्राभधे छन्दसि अष्टौ अक्षराणि भवन्ति, अतः अस्य परिगणनं अनुष्टुभि करणीयं, किन्तु अनुष्टुभि यथा नियतलक्षणं भवति न तथा अत्रेति विचार्य पृथक्पृथगभिधानमस्य छन्दसः । अत्र तु नियतगुरुलघुत्वाभावादस्य पथ्या-चपलादिभेदाः पृथग्वर्णिताश्छन्दसाम् ।

यत्र प्रथमाक्षरादूर्ध्वं न्सौ नगण-सगणौ न स्याताम्, मगणादिषु कोऽपि यथेच्छं स्यात् । अब्धेः—चतुर्थाक्षरात् परतः यो यगणः स्यात्, तदा वक्त्रं नाम ख्यातम् । अनुष्टुप्छन्दस्यन्तर्गतं तत् ख्यातमिति स्वीकृतमाचार्यैः । समपादयोः प्रथमा-क्षरात् पश्चाद रगणोऽपि न भवतीति सम्प्रदायानुरोधः ।

भावार्थ—यदि प्रथम अक्षर के बाद नगण और सगण न हों तथा चौथे अक्षर के बाद यगण हो तो अनुष्टुप् छन्द के अन्तर्गत इसे '**वक्त्र**' नामक छन्द कहते हैं । चतुर्थ अक्षर के बाद इस में रगण का होना छन्दःसम्प्रदाय में स्वीकृत है ।

उदाहरण—

ल. य. य. गु. ल. य. य. गु.
। । ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ
नवधाराम्बुसंसिक्तं वसुधागन्धिनिश्वासम् ।
गु. ज. य गु. ल. त य गु.
ऽ । ऽ । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ ऽ ऽ
किंचिदुन्नतघोणाग्रं महीकामयते वक्त्रम् ॥

पथ्यावक्त्रम्

युजोर्जेन सरिद्भर्तुः पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम् ॥ २२ ॥

वक्त्राख्यवृत्तस्य भेदानुदाहरति—युजोः=युग्मयोः (द्वितीय-चतुर्थपादयोः),

सरिद्भर्तुः = समुद्रात् (चतुर्थाक्षरात्) परतः, जेन = जगणेन युक्तं पथ्यावक्त्रं नाम वृत्तं पिङ्गलाचार्येण प्रकीर्तितम् ।

भावार्थ—जिस छन्द के दूसरे और चौथे पादों में चौथे अक्षर के पश्चात् जगण का प्रयोग किया गया हो, उसे पिंगलाचार्य ने **'पथ्यावक्त्र'** कहा है ।

उदाहरण—

गु. त. य. ल. गु. म. ज. ल.

S S S I I S S I S S S S I S I I

नित्यं नीतिनिषण्णस्य, राज्ञोराष्ट्रं न सीदति ।

ल. य. य. गु. गु. म. ज. गु.

I I S S I S S S S S S S I S I S

नहि पथ्याशिनः काये, जायन्ते व्याधिवेदना ॥

विपरीतपथ्यावक्त्रम्

ओजयोर्जेन वारिधेस्तदेव विपरीतादि ॥ २३ ॥

विपरीतपथ्यावक्त्रं निर्दिशति—ओजयोः=विषमपादयुग्मयोः (अत्र क्वचित् 'अयुजोः' इति पाठभेदो दृश्यते, न तत्र कोऽपि विशेषः, न वा अर्थभेदः) प्रथम-तृतीयपादयोः, यदि वारिधेः = चतुर्थाक्षरात् परतः, जेन = जगणेन युक्ता-पद्यरचना स्यात् तदा तदेव—पथ्यावक्त्रमेव वृत्तं, विपरीतादि—विपरीतशब्दपूर्वक-भवतीति बोद्ध्यम् ।

भावार्थ—यदि प्रथम तथा तृतीय चरणों में चौथे अक्षर के बाद जगण का प्रयोग किया गया हो तो उसे **विपरीतपथ्यावक्त्र** नामक वृत्त समझना चाहिये ।

उदाहरण—

गु. य. ज. गु. गु. म. य. गु.

S I S S I S I S S S S I S S S S

भर्तुराज्ञानुवर्तिनी, या स्त्री स्यात्सा स्थिरा लक्ष्मीः ।

गु. य. ज. गु. ल. य. य. गु.

S I S S I S I S I I S S I S S S

स्वप्रभुत्वाऽभिमानिनी, विपरीता परित्याज्या ॥

चपलावक्त्रम्

चपलावक्त्रमयुजोर्नकारश्चेत् पयोराशेः ॥ २४ ॥

चपलावक्त्रं निर्दिशति—अयुजोः = विषमयोः (प्रथमतृतीयपादयोः) पयोराशेः = समुद्रात् (समुद्रशब्दग्रहणाच्चतुःसङ्ख्या गृह्यते ।) चतुर्थादक्षरात् परतः, चेत्, = यदि, नकारः = नगणः स्यात्, तदा 'चपलावक्त्रम्' नाम वृत्तं भवति ।

भावार्थ—जिस छन्द के विषम (प्रथम तथा तृतीय) चरणों में चौथे अक्षर के बाद जगण की स्थिति हो तो उसे '**चपलावक्त्र**' छन्द कहते हैं ।

उदाहरण—

गु. य. न. गु. गु. म. य. गु.

S I S S I I I S S S S S I S S S

क्षीयमाणाऽग्रदशना, वक्त्रानिर्मांसनासाग्रा ।

गु. य. न. गु. ल. य. य. गु.

S I S S I I I S I I S S I S S S

कन्यका वक्त्रचपला, लभते धूर्तसौभाग्यम् ॥

युग्मविपुला वृत्तम्

यस्यां लः सप्तमो युग्मे सा युग्मविपुला मता ॥ २५ ॥

युग्मविपुलां निर्दिशति—यस्यां (पथ्यायां) युग्मे=समपादे (द्वितीयचतुर्थयोरित्याशयः), सप्तमः वर्णः, लः=लघुसंज्ञकः स्यात्, सा 'युग्मविपुला' कथिता ।

विशेषः—यद्यपि पथ्यानामके वृत्तेऽपि द्वितीयचतुर्थपादयोः सप्तमो वर्णो लघु भवति, तथापि तत्र जगणस्य प्राधान्यम्, अत्र तु प्राधान्ये सप्तमवर्णस्य लघुत्वं भवति ।

भावार्थ—जिस छन्द के दूसरे चौथे चरण में सातवाँ वर्ण लघु हो, उसे '**युग्मविपुला**' छन्द कहते हैं ।

उदाहरण—

ल. ल.

I I

इयं सखे चन्द्रमुखी स्मितज्योत्स्ना च मानिनी ।

ल. ल.

I I

इन्दीवराक्षी हृदयं दन्दहीति तथापि मे ॥

विशेष—यहाँ चारों पादों के सप्तम वर्ण लघु हैं। शेषं सामान्य है।

सैतवस्याऽखिलेस्वपि ॥ २६ ॥

युग्मविपुलासम्बन्धे सैतवाचार्यमतं प्रस्तौति—सैतवमुनेः मते चतुर्षु पादेषु (समेषु विषमेषु च) सप्तमो वर्णो लघु भवतीति। यद्यपि पूर्वोक्तं युग्मविपुलाया उदाहरणमपि सैतवाचार्यसम्मतमेव निर्दिष्टं प्राक्तनैः टीकाकर्तृभिः। तथाप्यत्रोदाहरणान्तरं प्रस्तूयते।

भावार्थ—सैतव नामक आचार्य के मत में जिस छन्द के चारों पादों के सप्तम वर्ण लघु हों उसे **'युग्मविपुला'** कहते हैं।

विशेष—ऊपर वाले लक्षण में जब कि केवल दूसरे और चौथे पाद के सप्तम अक्षर को लघु होने का निर्देश दिया गया था। किन्तु उदाहरणोक्त पद्य के चारों पादों के सप्तम अक्षर लघु है। 'द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्व' यह एक प्रतिज्ञा अनुष्टुप् छन्द की भी है, पाठक ध्यान दें।

उदाहरण— ल० ल०

| |

सैतवेन पथाऽर्णवं तीर्णो दशरथात्मजः।

ल० ल०

| |

रक्षःक्षयकरीं पुनः प्रतिज्ञां स्वेन बाहुना ॥

भविपुलावृत्तम्।

भेनाब्धितो भाद्विपुला ॥ २७ ॥

भविपुलावृत्तमुदाहरति—यदि अब्धितः = चतुर्थाक्षरात्, भेन = भगणेन संयुता चेत् तदा भकारेण युक्ता विपुला (भविपुला) भवति। अत्र केचिच्छन्दोमर्मज्ञाः षड्विंशतिलक्षणोक्तम् **'अखिलेष्वपि'** पदमनुवर्तयन्ति। केचित् तु विषमपादविषयेयमिति स्वीकुर्वन्ति। विज्ञैरुदाहरणान्यनुसन्धेयानि।

भावार्थ—चतुर्थ अक्षर के बाद यदि भगण हो तो उसे **'भविपुला'** वृत्त कहते हैं। मतान्तरों के अनुसार कोई इस लक्षण को विषम चरणों में तथा कोई आचार्य सभी चरणों में स्वीकार करते हैं।

उदाहरण— भ

ऽ । ।

इयं सखे चन्द्रमुखी स्मितज्योत्स्ना च मानिनी।

भ

S I I

इन्द्रीवराक्षी सततं दहतीति तथापि मे ॥

यह विषम चरणों का उदाहरण है। यह सम्पूर्ण पद्य 'युग्मविपुला' छन्द का है। देखें २५वें लक्षण के उदाहरण में।

रविपुला

इत्थमन्या रश्चतुर्थात् ॥ २८ ॥

रविपुलावृत्तं निर्दिशति—इत्थं = चतुर्थवर्णात् परो यदि रः = रगणः स्यात् तदा सा 'रविपुला' इति उच्यते।

भावार्थ—यदि चौथे वर्ण के बाद जिस छन्द के प्रथम तृतीय चरण में 'रगण' का प्रयोग हुआ हो, उसे **'रविपुला'** कहते हैं। पहले छन्द से इसमें 'रगण' मात्र का भेद किया गया है।

उदाहरण— र०

S I S

लक्ष्मीपतिं लोकनाथं रथाङ्गधरमीश्वरम्।

र०

S I S

यज्ञेश्वरं शार्ङ्गपाणिं प्रणमामि त्रयीतनुम् ॥

नविपुला

नोम्बुधेश्चेन्नविपुला ॥ २९ ॥

नविपुलां निर्दिशति—अम्बुधेः = चतुर्थाक्षरात् परतः, नः=नगणो यदि स्यात् तदा नकारपूर्विका विपुला भवति।

भावार्थ—यदि प्रथम पाद में चतुर्थ अक्षर के बाद यदि नगण का प्रयोग किया गया हो तो उसे **'नविपुला'** कहते हैं।

उदाहरण— न०

I I I

तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥

तविपुला

तोऽब्धेस्तत् पूर्वान्या भवेत् ॥ ३० ॥

तविपुलां निर्दिशति—अब्धेः = चतुर्थादक्षरात् परो यदि तः = तगणः, रयात् तदा अन्या विपुला भवेत् । एवमेव म-य-प्रभृतयो बहवो विपुलाभेदाः काव्यादिषु दृश्यन्ते ।

भावार्थ—चौथे वर्ण के बाद यदि प्रथम, तृतीय पाद में तगण हो तो उसे **'तविपुला'** वृत्त कहते हैं । इस प्रकार विपुला वृत्त के अन्य अनेक उदाहरण दृष्टि गोचर होते हैं ।

उदाहरण—

त०
ऽ ऽ ।
सा वैदुष्ये प्रौढिर्यदि सर्वशास्त्रानुगामिनी ।
त०
ऽ ऽ ।
सा शूरता श्रेष्ठा यदि सर्वशास्त्रानुगामिनी ॥

इति वक्त्रप्रकरणम् ॥

अथ मात्रासमकप्रकरणम्

अचलधृतिवृत्तम्

द्विकगुणितवसुलघुरचलधृतिरिति ॥ ३१ ॥

मात्रा समवृत्तप्रकरणे प्रथमम् अचलधृतिं निर्दिशति—बहुत्र मूललक्षणे 'द्विगुणितेति' पदप्रयोगो दृश्यते । अनेन न तथेष्टापूर्तिर्भवति, यथा—द्विकगुणित पदेन, विद्वांसः स्वयमेव विचारयन्तु । तत्र द्विकगुणितवसुलघुः—द्विकेन = द्वाभ्यां गुणिताः वसवः = अष्टौ लघवः वर्णाः यत्र सा षोडशमात्रात्मिका अचलधृतिरिति । इमामचलधृतिं पिङ्गलमुनिः, गीत्यार्या नाम जातिभेदं स्वीकरोति ।

भावार्थ—जिस छन्द में दो से गुणित आठ अर्थात् (२ × ८ = १६) सोलह लघु वर्ण हों, उसे **अचलधृति** कहते हैं । इसी को पिंगलमुनि गीत्यार्या नामक जातिभेद कहते हैं । इसके प्रत्येक पाद में १६ लघुवर्ण होते हैं ।

उदाहरण— । । । । । । । । । । । । । । । ।
मदकलखगकुलकलरवमुखरिणि ।
। । । । । । । । । । । । । । । ।
विकसितसरसिजपरिमलसुरभिणि ॥

।।।।।।।।।।।　।।।　।।
गिरिवरपरिसरसरसि महति खलु ।
।।।।।।।।।।।।।।।।।।
रतिरतिशयमिह मम हृदि विलसति ॥

मात्रासमकम्

मात्रासमकं नवमो ल्गान्तम् ॥ ३२ ॥

मात्रासमकं निर्दिशति—यस्य श्लोकस्य पादे नवमः ल्=लघुः अन्तम्=अन्तिमं, गः=गुरुः च स्यात्, तद्वृत्तं मात्रासमकमित्युच्यते अस्मिन् छन्दसि अपि षोडशमात्राः भवन्ति ।

भावार्थ—जिस छन्द में नवीं मात्रा लघु और अन्तिम (१६ वीं) मात्रा गुरु हो, उसे **मात्रासमक** वृत्त कहते हैं ।

ल.　गु.　ल.　गु.
९　१६　९　१६
SS।।S　।।SSSS SSS　।।SSS
अश्मश्रुमुखो विरलैर्दन्तैर्गम्भीराक्षो मितनासाग्रः ।
ल.　गु.　ल.　गु.
९　१६　९　१६
SS।।S　।।S　SSSS।।S।।SSS
निर्मांसहनुः स्फुटितैः केशैर्मात्रासमकं लभते दुःखम् ॥

विश्लोकवृत्तम्

जोन्लावथाम्बुधेर्विश्लोकः ॥ ३३ ॥

विश्लोकं निर्दिशति—अम्बुधेः चतुष्कलातः पश्चात् जः जगणो यत्र भवति तद् विश्लोकम्, अथवा न्लौ चतुर्लघुरूपो वा यत्र गणः । शेषं पूर्ववत् ।

भावार्थ—जिस छन्द में चार मात्राओं के बाद जगण हो अथवा ४ लघुवर्ण हों तो उसे **विश्लोक** कहते हैं । निम्नलिखित उदाहरणों में से प्रथम में ४ मात्रा के बाद जगण तथा द्वितीय में ४ मात्राओं के बाद ४ लघु चारों पादों में हैं ।

उदाहरण—प्रथम

ज०　ज०
SS　।S।SS　SS　S　S।S।　SSSS
सद्यः पदारविन्दे मातः शान्ति तवाति सौभाग्येन ।

ज० ज०

S S । S । S । S S S S । S । S S S S

लप्स्ये कदा भवानि प्रेम्णा येनात्र पूरुषो विश्लोकः ॥

उदाहरण—द्वितीय

S S । । । । S S S S S । । । । । । S । । S S

भ्रातर्गुणरहितं विश्लोकं दुर्णयकरणकदर्थितलोकम् ।

S S । । । । S । । S S S S । । । । S । । S S

जातं महितकुलेऽप्यविनीतं मित्रं परिहर साधु विगीतम् ॥

वानवासिकावृत्तम्

तद्युगलाद् वानवासिका स्यात् ॥ ३४ ॥

वानवासिकां निर्दिशति—तद्युगलात् = अम्बुधिद्वयात्, अर्थात् अष्टमात्रानन्तरं यदि जगणः, चत्वारो लघुवर्णाः वा स्युः, तदा वनवासिका वृत्तम् । इदमपि मात्रासमकं वृत्तम् ।

भावार्थ—यदि आठ मात्राओं के बाद जगण अथवा चार लघु वर्ण पद्य में प्रयुक्त हों तो उसे **वनवासिका** वृत्त कहते हैं ।

उदाहरण—प्रथम—

ज.

S । । S S । S । S S

या स्वसुखार्थं सदैव भक्त्या ।

द्वितीय—

४ ल.

S । । S S । । । । S S

लोकहितार्थं हरिहरमूर्ती ॥

चित्रा वृत्तम्

बाणाष्टनवसु यदि लश्चित्रा ॥ ३५ ॥

चित्रां निर्दिशति—बाणाः = पञ्च, अष्टौ नव एतेषु यदि, लः = लघुः वर्णः स्यात् । शेषं प्राग्वत् । तदा 'चित्रा' नाम वृत्तं भवति । इदमपि मात्रासमकवृत्तमेव बोध्यम् ।

भावार्थ—जिस पद्य में पाँचवीं, आठवीं तथा नवीं मात्रा लघु हो तो उसे **चित्रा** नामक मात्रासमकवृत्त कहते हैं।

उदाहरण—

ल. ल.ल.
। । ऽ । । ।।।।ऽऽऽ
यदि वाञ्च्छसि परपदमारोढुं
ल. ल.ल.
ऽऽ ।।।।।।।।ऽ
मैत्रीं परिहर सह वनिताभिः।
ल. ल. ल.
ऽ।। ।। ।। ।।ऽऽऽ
मुह्यति मुनि रपि विषयासङ्गा–
ल. ल. ल.
ऽऽ ।।। । ।।ऽऽऽ
च्चित्रा भवति हि मनसो वृत्तिः॥

उपचित्रा वृत्तम्।

उपचित्रा नवमे परयुक्ते॥ ३६॥

उपचित्रां निर्दिशति—नवमे मात्रास्वरूपे परेण दशमेन मात्रास्वरूपेण **युक्ते** सति 'उपचित्रा' नाम मात्रासमकं वृत्तं भवति।

अन्यत्रस्या छन्दस एवंविधं लक्षणं प्राप्यते—

अष्टाभ्यो भाद्गावुपचित्रा

यस्मिन् छन्दसि अष्टाभ्यो मात्राभ्यः परतः, भाद् भगणाद्, **गौ द्वौ गुरुवर्णौ** भवतः तद्वृत्तम् 'उपचित्रा' नामकं भवति।

भावार्थ—यदि नवीं मात्रा दशवीं मात्रा के साथ युक्त हो तो उस **मात्रा**-समक को **'उपचित्रा'** वृत्त कहते हैं।

उदाहरण—

९।१० ९।१०
ऽ ऽऽ ।।ऽ।।ऽऽ ऽ ऽऽ ।।ऽऽ।ऽऽ
यच्चित्तं गुरुसक्तमुदारं विद्याभ्यासमहाव्यसनञ्च।

९।१० ९।१०

S S S I I S I I S S S I I S I I S I I S S
पृथ्वी तस्य गुणैरुपचित्रा चन्द्रमरीचिनिभैर्भवतीयम् ॥

अन्य मत के अनुसार 'जिस छन्द में आठ मात्राओं के बाद एक भगण हो और अन्त में दो गुरु वर्ण हों उसे 'उपचित्रा' कहते हैं।' यह भी मात्रासमक वृत्त है।

पादाकुलकवृत्तम्

यदतीतकृतविविधलक्ष्मयुतैर्मात्रासमपादिपादैः कलितम्।
अनियतवृत्तपरिमाणयुक्तं प्रथितं जगत्सु पादाकुलकम् ॥ ३७ ॥

प्रस्तुतक्रमोक्तविविधच्छन्दसां लक्षणैर्यस्य पद्यस्य पादा आकुला व्याप्ताः स्युस्तत् पादाकुलकं नाम वृत्तं, सङ्क्षेपतो विज्ञेयम्। तदेव विस्तरेण निर्दिश्यते—अतीतानि अस्मिन् प्रकरणे निर्दिष्टानि, कृतानि विहितानि, विविधानि विभिन्नगुरुलघुवर्णैः समन्वितानि तत्तद्गणैर्युक्तानि च, लक्ष्माणि लक्षणानि; तद्युतैः मात्रासमादीनां पादैः कलितं विरचितम्, तथा अनियतवृत्तपरिमाण-युक्तं पादचतुष्टयेऽपि भिन्नभिन्नवृत्तानां लक्षणैः समन्वितं, किन्तु षोडशमात्रा-भिर्युक्तं यद्वृत्तं तद् संसारे प्रसिद्धं पादाकुलकं नाम। अस्य छन्दस इद-मेवोदाहरणमिति लक्षणैः सङ्गमय्यात्रोदाह्रियते।

भावार्थ—जिस छन्द में इसी प्रकरण में पहले कहे गये विविध प्रकार के लक्षण दिखलायी देते हों, अर्थात् जो छन्द पूर्वोक्त मात्रासमक आदि वृत्तों के लक्षणों से रचित हो, जिस के चारों चरणों में भिन्न-भिन्न छन्दों के लक्षण हों, किन्तु १६ मात्राएँ अवश्य हों, तो उसे **'पादाकुलक'** वृत्त कहते हैं।

उदाहरण—प्रथम—

ज. गु.

I I S I I I I I I I S I I S
यदतीतकृतविविधलक्ष्मयुतैः

ज. गु.

S S I S I S S I I S
मात्रासमादिपादैः कलितम्।

ज. गु.

। । । S S । । । S । । । S
अनियतवृत्तपरिमाणसहितं
ज. गु.

। । S । S । S S । । S
प्रथितं जगत्सु पादाकुलकम् ॥

उदाहरण—द्वितीय—

अलिवाचालितविकसितचूते; काले मदनसमागमदूते ।
स्मृत्वा कान्तां परिहृतसार्थः, पादाकुलकं धावति पान्थः ॥

विशेष—इस उदाहरण के प्रथम पाद में मात्रासमक, विश्लोक और चित्रा का, द्वितीय पाद में मात्रासमक, विश्लोक और उपचित्रा का, तृतीय पाद में मात्रासमक एवं वानवासिका का और चतुर्थ पाद में मात्रासमक, उपचित्रा और विश्लोक का लक्षण विद्यमान है, अतः यह पादाकुलक का उदाहरण है ।

वृत्तस्य ला विना वर्णैर्गा वर्णा गुरुभिस्तथा ।
गुरवो लैर्दले नित्यं प्रमाणमिति निश्चितम् ॥ ३८ ॥

सम्प्रति वृत्तस्य गुरुलघुसङ्ख्यावबोधप्रकारं ग्रन्थकृदेवं निर्दिशति—वृत्तस्य वृत्तजातस्य (अर्थात् यस्य कस्यापि छन्दसः), लालघुमात्रा, वर्णैः अक्षरैः रहिताः सत्यः, गा = गुरुवर्णा भवन्ति । स्पष्टीकरणम्—यथा—उपर्युक्तपद्यस्य—

S S । S । S S S
प्रथमपादे चतुर्दशमात्राः सन्ति—'वृत्तस्य ला विना वर्णैः । एता यदा अष्टाक्षरै रहिताः कृताः स्युः तदा षट्सङ्ख्याको गुरुवर्णा अवशिष्टा भवन्तीति स्पष्टम् । मात्रा रहितास्ते वर्णाः केवलं हलन्ता वर्णरूपेणावशिष्टा जायन्ते । एवञ्च लैः लघुभिः विना दले कृते ते वर्णा गुरवो भवन्ति ।

भावार्थ—यहाँ वृत्त में कहे गये गुरु, लघु मात्राओं तथा वर्णों की संख्या के जानने की विधि का वर्णन किया जा रहा है ।

पहली विधि—जब वृत्त के चरणों में से लघु मात्रा में से वर्णों की संख्या को घटा दिया जाता है तो जो संख्या शेष बचती है उस वृत्त के उस पाद में

उतने ही गुरु समझें। इसके विपरीत जब वृत्त की मात्राओं में से गुरु संख्या को घटा दिया जाता है, तो जो शेष मिले उतने ही वर्ण उस पाद में समझें।

दूसरी विधि—वृत्त की मात्रा संख्या में से लघु मात्रा संख्या को घटा देने से जो शेष बचे उसे पुनः आधा करें उस आधा किये हुए से जो शेष बचे उतने ही गुरु समझें। उदाहरण—उक्त उदाहरण पद्य के प्रथम पाद में मात्रा संख्या १४ है, इसमें से वर्ण संख्या ८ को घटा देने पर शेष ६ बचता है इसलिए इस पाद में ६ गुरु वर्ण हैं। इसी प्रकार मात्रा संख्या १४ में से गुरु संख्या ६ घटा देने से वर्ण संख्या ८ निकल आयेगी।

तीसरी विधि—मात्रा संख्या १४ में से लघु संख्या २ (ऊपर देखें—जहाँ प्रथम पाद में गुरु-लघु के चिह्न लगाये हैं—केवल उस पाद में स्य वि ये दो वर्ण लघु हैं।) को घटा देने से १२ शेष बचते हैं, उसका आधा करने पर ६ संख्या प्राप्त होती है। अतः इस पाद में ६ गुरु वर्ण हैं। इसी का अनुसरण अन्यत्र भी करें।

इति मात्रासमकप्रकरणम्।

शिखावृत्तम्

शिखिगुणितदशलघुरचितमपगतलघुयुगलमपरमिदमखिलम्।
सगुरुशकलयुगलकमपि सुपरिघटितललितपदविततति भवति शिखा ॥३९॥

मात्रानियमघटितत्वात् तद्वृत्त प्रसङ्गेन द्विखण्डकानि वृत्तानि समुपक्रममाणः प्रथमं शिखावृत्तं विवृणोति—शिखी = वह्निः स च गार्हपत्याहवनीय दक्षिणाग्निभेदैस्त्रिधा विभक्तो भवति। अत एव शिखिपदेन त्रिसङ्ख्यावगम्यते। शिखिभिः (त्रिभिः) गुणिता ये दशलघवो वर्णाः, तैः रचितमपगतलघुयुगलं = द्विलघुहीनम्, अर्थात् अष्टाविंशतिलघुयुक्तं गुरुद्वयसहितं च। इदं = पूर्वोक्तम्, अखिलं = सम्पूर्णं त्रिंशल्लघुवर्णयुक्तम् अपरं = द्वितीयं शकलं = पादं कार्यम्। उभावपि पादौ सगुरु = अन्त्यगुरुयुगलेन सहितौ स्याताम्। पुनः तत् कीदृशं स्यात्—सुपरिघटितललितपदविततति सुपरिघटिता = कविप्रतिभोत्पादिता ललिता सचेतसां चेतसश्चमत्कारकारिणी पदानां सुप्तिङन्तयुतानां विततिः विस्तारो यत्र सा 'शिखा' कथ्यते।

भावार्थ—अग्नि (तीन) संख्या से गुणा किये हुए दस (३ × १० = ३०) लघु वर्ण जिसमें हों उसमें से दो लघु वर्ण निकालकर (३०—२ =) २८ लघु

वर्णों से जिसके प्रथम चरण का निर्माण किया गया हो, उसी प्रकार का दूसरा उत्तरार्ध भी रचा गया हो, प्रत्येक पाद के अन्त में जिसमें एक-एक गुरु वर्ण हो और जिसमें सहृदयहृदयहारिणी पदावलि का प्रयोग किया गया हो ऐसे छन्द का नाम **'शिखा'** है। अर्थात् प्रथम पाद में २८ लघु १ गुरु, द्वितीय पाद में ३० लघु १ गुरु जिसमें हो उसे 'शिखा' कहते हैं।

उदाहरण—ऊपर लक्षणोक्त पद्य ही इसका उदाहरण भी है।

लघु २८ गु०

। ।। ।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।। । ऽ

शिखिगुणितदशलघुरचितमपगतलघुयुगलमपरमिदमखिलम्।

३० लघु गु०

।।।।।।।।।।। । ।।।।।।।।।।।।।। ।।। । ऽ

सगुरुशकलयुगलकमपि सुपरिघटितललितपदविततिभवति शिखा॥

खञ्जावृत्तम्

विनिमयविहितशकलयुगलकलितपदविततिविरचितगुणनिचया ।
श्रुतिसुखकृदियमपि जगति जि जशिर उपगतवति सति भवति खजा ॥४०॥

खञ्जावृत्तं विवृणोति—इदं वृत्तं शिखावृतस्य सर्वथा विपरीतं वर्तते। शिखायां प्रथम पादे अष्टाविंशति लघव एकश्च अन्ते गुरुर्भवति। द्वितीय पादे त्रिंशल्लघव एको गुरुर्भवति, किन्तु खञ्जा वृत्ते प्रथमा पङ्क्तिः द्वितीयेन समा, द्वितीयापङ्क्तिः प्रथमेन समा भवति। तदेव विशेषेण स्पष्टीक्रियते—विनिमयेन शिखावृत्तस्य वैपरीत्येन विहितं कृतं यत् शकलयुगलं खण्डद्वयं, तस्य ये लघवो वर्णाः तैर्ललिता सद्यश्चमत्कारकारिणी या पदानां विततिः क्रमविस्तारः तया विरचितः कृतः, गुणानां साहित्य शास्त्रोक्तसौकुमार्यादीनां, निचयः निकरः, यस्याः सा तादृशी, श्रुतिसुखकृत् श्रवणसमकालमेवानन्ददायिनी, जि = जकारे, जशिर उपगतवति सति जकारात् प्राक् किन्तु तेन सहयुक्ते सति 'खञ्जा' नाम वृतम् भवति। अस्य छन्दस इदमेवोदाहरणम्।

भावार्थ—यह वृत्त शिखा वृत्त का उलटा होता है। शिखावृत्त की प्रथम पंक्ति के समान खञ्जा वृत्त की दूसरी पंक्ति होती है और द्वितीय पंक्ति के समान प्रथम पंक्ति होती है। अर्थात् **खञ्जा** वृत्त की प्रथम पंक्ति में ३० लघु-वर्ण और अन्तिम एक गुरु वर्ण होता है, द्वितीय पंक्ति में २८ लघुवर्ण और एक गुरुवर्ण होता है, यही अन्तर दोनों छन्दों में मूल रूप से है।

उदाहरण--

३० लघु गु०

। ऽ

विनिमयविहितशकलयुगललघुललितपदविततिरचितगुणनिचया।

२८ लघु गु०

। ऽ

श्रुतिसुखकृदियमपि जगति त्रि जशिर उपगतवतिसति भवति खजा॥

अनङ्गक्रीडावृत्तम्

अष्टावर्धे गा द्व्यभ्यस्ता यस्याः साऽनङ्गक्रीडोक्ता।
दलमपरमपि वसुगुणितसलिलनिधिलघुकविरचितपदविततति भवति ॥४१॥

अनङ्गक्रीडां निर्दिशति—यस्य वृत्तस्य अर्धे अष्टौ गाः = गुरवः, द्व्यभ्यस्ताः = द्विगुणाः (षोडशगुरवः) स्युः। अपरञ्च दलं = द्वितीयखण्डोऽपि, वसुगुणित-सलिलनिधिः = अष्टगुणिताः ये समुद्राः (चत्वारः) लघवः (८×४=३२) यत्र स्युः सा 'अनङ्गक्रीडा' नाम्नी उक्ता भवति। अपरदलस्य विशेषणं प्रस्तौति—कविरचित पदविततिः = कविरचिता पदानां विस्तृतिर्यत्र।

भावार्थ—जिसकी पूर्वार्द्ध में दो से गुणित आठ (२×८) = १६ गुरुवर्ण हों और उत्तरार्द्ध में आठ से गुणित चार (८×८) = ३२ लघुवर्ण हों, इस प्रकार की मनोहर पदपंक्ति से विभूषित छन्द का नाम **'अनङ्गक्रीडा'** होता है।

उदाहरण—

१६ गुरु

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

सौम्यां दृष्टिं देहि स्नेहा हे हेऽस्माकं मानं मुक्त्वा।

३२ लघु

। ।

शशधरमुखिमुखमपनय मम हृदि मनसिजरुजमपहर लघुतरमिह॥

विशेष—केवल उक्त लक्षण को विपरीत (ऊपर के अर्धांश को नीचे और नीचे के अर्धांश को ऊपर) कर देने से इसे 'ज्योति' नामक छन्द कहते हैं। पिङ्गलमुनि ने इन दोनों छन्दों को 'शिखा' संज्ञा दी है। उदाहरण—

३२ लघु

यदि सुखमनुपममपरमभिलषसि परिहर युवतिषु रतिमतिशयमिह।

१६ गुरु

आत्मज्योतिर्योगाभ्यासाद् दृष्ट्वा दुःखच्छेदं कुर्याः॥

रुचिरावृत्तम्

त्रिगुणनवलघुरवसितिगुरुरिति दलयुगकृततनुरतिरुचिरा॥ ४२॥

रुचिरावृत्तं निर्दिशति—त्रिभिर्गुणिता नव (३×९=) २७ लघवो वर्णा यस्मिन्। अवसित गुरुः=अवसाने गुरुः, सा रुचिरेत्याशयः। अनेन प्रकारेण दलयुगलकृततनुः=दलयुगलेन प्रथम-द्वितीयपङ्क्तिभ्यां कृता सहिता तनुः स्वरूपं यस्याः सा पदरचना, इह छन्दःशास्त्रे 'रुचिरा' इति कथ्यते। अस्या एव अपरं नाम 'चूलिका' इति पिङ्गलसम्मतम्।

भावार्थ—जिस वृत्त प्रथम तथा द्वितीय भाग में तिगुने नौ (३×९)= २७ लघु वर्ण हों और अन्त में एक गुरु वर्ण हो उसे **'रुचिरा'** कहते हैं। **पिंगल** मुनि के मत में इसी को 'चूलिका' वृत्त कहते हैं।

उदाहरण—

२७ लघु गु०

।।।।। ।।।।।।।।।।। ।।।।।।।।। ।।। ।ऽ

रघुकुलनलिनविकसनशशभृति दशमुखरिपुकुलतिमिर हरे।

२९ लघु गु०

।।।।।।।।।।।।।।।।।। ।। ।।।।। ।।।।।ऽ

विषधरविषमविषयविषहरमहसि कुरु रतिमिह दशरथतनये॥

विशेष—ऊपर दिये गये लक्षण के अनुसार श्लोक की दोनों पंक्तियों में २७ लघु वर्ण और अन्तिम वर्ण गुरु होना चाहिये, किन्तु उदाहरण के लिये प्रयुक्त पद्य की प्रथम पंक्ति लक्षण के अनुकूल है, दूसरी पंक्ति में २९ लघु वर्ण हैं और अगला वर्ण गुरु है, जो लक्षण के सर्वथा विरुद्ध है। यदि दूसरी पंक्ति के आरम्भ में 'अहिविषमविषयविषहरमहसि…' ऐसा पाठ कर देने पर लक्षण शुद्धि हो जायेगी।

इति द्वितीयोऽध्यायः।



तृतीयोऽध्यायः

(समवृत्तप्रकरण)

अथ [१] उक्ता—

गुः श्रीः ॥ १ ॥

एकाक्षरपादायामुक्तायां गुरेकश्चेत्पादः तदा 'श्री' नाम वृत्तं भवति।

भावार्थ—जिन छन्दों के एक पाद में एक ही अक्षर होता है वे 'उक्ता' जाति के छन्द हैं। इसी जाति के अन्तर्गत जिस छन्द के एक पाद में एक ही अक्षर हो तथा वह गुरु दीर्घ हो तो उस छन्द को '**श्री**' कहते हैं।

उदाहरण—

गु.　　गु.　　गु.　　गु.
S　　S　　S　　S
वि — ष्णुं । व — न्दे ॥

—छन्दोमञ्जरी

अथ [२] अत्युक्ता—

गौ स्त्री ॥ २ ॥

द्वौ गुरु यदि पादे भवतस्तदा 'स्त्री' नाम वृत्तं भवति।

भावार्थ—जिन छन्दों के एक पाद में दो अक्षर होता है वे 'अत्युक्ता' जाति के छन्द हैं। इसी जाति के अन्तर्गत जिस छन्द के दोनों अक्षर गुरु हों वह '**स्त्री**' नाम का छन्द कहलाता है।

उदाहरण—

गु. गु.　　गु. गु.　　गु. गु.　　गु. गु.
S S　　S S　　S S　　S S
गोप — स्त्रीभिः। कृष्णो — रेमे।

—छन्दोमञ्जरी

अथ [३] मध्या—

मो नारी ॥ ३ ॥

यदि पादे मो मगणश्चेत् तदा 'नारी' नाम वृत्तं भवति।

भावार्थ—जिन छन्दों के एक पाद में तीन अक्षर हों वे 'मध्या' जाति के छन्द हैं। इसी जाति में स्थित जिस छन्द के एक पाद के तीनों अक्षर गुरु हों वह **'नारी'** कहलाता है।

उदाहरण—

म.　म.　म.　म.

ऽऽऽ ऽऽऽ ऽऽ ऽ ऽऽऽ

गोपानां नारीभिः। श्लिष्टोऽव्यात्कृष्णो वः॥

—छन्दोमञ्जरी

रो मृगी ॥ ४ ॥

रगणश्चेत्पादस्तदा 'मृगी' नाम वृत्तं स्यात्।

भावार्थ—इसी ही 'मध्या' जाति में स्थित उस वृत्त को जिसके एक पाद में एक रगण (ऽ।ऽ) हो **'मृगी'** कहते हैं—

उदाहरण—

र.　र.　र.　र.

ऽ।ऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ

सा मृगी लोचना। राधिका श्रीपतेः॥

—छन्दोमञ्जरी

अथ [४] प्रतिष्ठा—

म्गौ चेत्कन्या ॥ ५ ॥

म्गौ मगणगुरू चेत्पादश्चतुर्गुरुरित्यर्थस्तदा 'कन्या' नाम वृत्तं भवति।

भावार्थ—जिन छन्दों के एक पाद में चार अक्षर हों वे छन्द 'प्रतिष्ठा' जाति के कहलाते हैं। इसी जाति में स्थित उस वृत्त को जिसके पाद स्थित चारों अक्षर गुरु हों **कन्या** कहते हैं।

उदाहरण—

म.　गु.　म.　गु.

ऽ ऽऽ ऽ ऽऽऽ ऽ

भास्वत्कन्या सैका धन्या। यस्याः कूले कृष्णोऽखेलत्॥

अथ [५] सुप्रतिष्ठा

भ्गौ गिति पङ्क्तिः ॥ ६ ॥

यदि पादे भगण गुरू पुनर्गुरुश्चेत्तर्हि 'पङ्क्तिः' नाम वत्तं भवति ।

भावार्थ—जिन छन्दों के एक पाद में पाँच अक्षर होते हैं वे **'सुप्रतिष्ठा'** जाति के छन्द कहलाते हैं । इसी जाति के अन्तर्गत जिसके प्रत्येक पाद में भगण (ऽ ।।) तथा पुनः दो गुरु हों उस छन्द को **'पङ्क्ति'** कहते हैं ।

उदाहरण—

भ. गु. गु. भ. गु. गु.

ऽ ।। ऽ ऽ ऽ ।। ऽ ऽ

कृष्णसनाथा तर्णकपंक्तिः । यामुनकच्छे चारु चचार ॥

—छन्दोमञ्जरी

अथ [६] गायत्री

त्यौ स्तस्तनुमध्या ॥ ७ ॥

त्यौ तगण-यगणौ यदि पादे स्तो भवतस्तदा 'तनुमध्या' नाम वृत्तं भवति ।

भावार्थ—जिन छन्दों के एक पाद में छः अक्षर हों वे 'गायत्री' जाति के छन्द हैं । इसी जाति में वर्तमान वह वृत्त जिसके पाद में तगण (ऽ ऽ ।) तथा यगण (। ऽ ऽ) हों **'तनुमध्या'** कहलाता है ।

उदाहरण—

त. य. त. य.

ऽ ऽ । । ऽ ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ

तेन प्रविभक्ता कामं वयसा सा । येन प्रविलासं धत्ते तनुमध्या ।

—सुवृत्ततिलक

नोट—क्षेमेन्द्रकृत 'सुवृत्ततिलक' में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया हुआ है ।

पूर्वाक्षरद्वयासक्तविरामेण षडक्षरा ।
तकारेण यकारेण, तनुमध्याऽभिधीयते ॥

शशिवदना न्यौ ॥ ८ ॥

यदि पादे नगण-यगणौ भवतस्तदा 'शशिवदना' नाम वृत्तं भवति ।

भावार्थ—इसी उपर्युक्त 'गायत्री' जाति के अन्तर्गत **'शशिवदना'** नामक छन्द भी होता है। इसके पाद में नगण (। । ।) तथा यगण (। ऽ ऽ) होता है।

उदाहरण—

न. य. न. य.

। । । । ऽ ऽ । । । । ऽ ऽ

शशिवदनानां व्रजतरुणीनाम्।
अधरसुधोर्मिं मधुरिपुरैच्छत् ॥

—छन्दोमञ्जरी

नोट—महाकवि कालिदास प्रणीत श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया हुआ है।

अगुरु चतुष्कं भवति गुरू द्वौ।
घनकुचयुग्मे, शशिवदनासौ ॥

विद्युल्लेखा मो मः ॥ ९ ॥

यदि पादे मगणौ स्तस्तदा विद्युल्लेखा नाम वृत्तं भवति।

भावार्थ—**विद्युल्लेखा** उस छन्द को कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में दो मगण (ऽ ऽ ऽ) होते हैं। अर्थात् जिसके पाद के सभी छः अक्षर गुरु हों।

उदाहरण—

म. म. ग. म.

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

गोपस्त्रीणां मुख्या। विद्युल्लेखा रूपा ॥
कालिन्दी तीरे सा। रेमे श्रीकृष्णेन ॥

—छन्दोमञ्जरी

त्सौ चेद्वसुमती ॥ १० ॥

तगण-सगणौ चेत्पादस्तदा वसुमती नाम वृत्तं भवति। गायत्र्यन्ते सर्वेषु पादेषु पादान्तयतिरित्याम्नायः।

भावार्थ—जिस छन्द के एक पाद में तगण (ऽ ऽ ।) तथा सगण (। । ऽ) होते हैं उसे **'वसुमती'** वृत्त कहते हैं।

उदाहरण—

त. स. त. स.

S S I I I S S S I I I S

राजीवनयना, नूनं वसुमती।
रामा भवति सा नूनं वसुमती ॥

अथ [७] उष्णिक्

म्सौ गः मदलेखा ॥ ११ ॥

मगण सगण गुरुभिर्मदलेखा नाम वृत्तं भवति।

भावार्थ—जिन छन्दों के एक पाद में सात अक्षर होते हैं वे 'उष्णिक्' जाति के छन्द कहलाते हैं। उसी जाति में वर्तमान जिसके प्रत्येक पाद में मगण (S S S) सगण (I I S) तथा एक गुरु (S) होता है, उसे **मदलेखा** कहते हैं।

उदाहरण—

म. स. गु. म. स. गु.

S S S I I S S S S S I I S S

रङ्गे बाहुविरुग्णात्, दन्तीन्द्रान्मदलेखा।
लग्नाभून्मुरशत्रौ, कस्तूरी रसचर्चा ॥

—छन्दोमञ्जरी

नोट—श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया है।

तुर्यं पञ्चमकं चेद्यत्र, स्याल्लघु बाले।
विद्वभिर्भृगनेत्रे, प्रोक्ता सा मदलेखा ॥

'छन्दोमञ्जरी' में इसका लक्षण निम्न प्रकार है।

म्सगौ स्यान्मदलेखा।

अथ [८] अनुष्टुप्

भौ गिति चित्रपदा गः ॥ १२ ॥

भगणौ गुरू च यत्र पादे सा 'चित्रपदा' भवति।

भावार्थ—जिन छन्दों के पाद में आठ अक्षर होते हैं वे छन्द 'अनुष्टुप्' जाति के कहे जाते हैं। इस जाति में अनेक प्रकार के छन्द होते हैं। उनका

क्रमशः वर्णन यहाँ किया जाता है। इस जाति में वर्तमान उस छन्द को जिसके एक पाद में दो भगण (ऽ।।) तथा दो गुरु (ऽऽ) होते हैं—**चित्रपदा** कहते हैं।

उदाहरण—

भ. भ. गु. गु. भ. भ. गु. गु.

ऽ।। ऽ।। ऽ ऽ ऽ।। ऽ।। ऽ ऽ

यस्य मुखे प्रियवाणी, चेतसि सज्जनता च।
चित्रपदाऽपि च लक्ष्मीस्तं पुरुषं न जहाति॥

—छन्दोवृत्ति

नोट—'छन्दोमञ्जरी' में इस छन्द का लक्षण तथा उदाहरण इस प्रकार दिया हुआ है।

चित्रपदा यदि भौ गौ।

उदाहरण—

यामुनसैकतदेशे, गोपवधूजलकेलौ।
कंसरिपोर्गतिलीला, चित्रपदा जगदव्यात्॥

मो मो गो गो विद्युन्माला॥ १२॥

यदि पादे मगणौ द्वौ गुरू च भवतस्तदा 'विद्युन्माला' नाम वृत्तं चतुर्भिश्चतुर्भिश्च यतिरिति सम्प्रदायः।

भावार्थ—अनुष्टुप् जाति ही में वर्तमान उस छन्द को जिसके प्रत्येक पाद में दो मगण (ऽऽऽ) तथा दो गुरु (ऽ) होते हैं, अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक पाद में सब (आठों) अक्षर दीर्घ हों—**विद्युन्माला** कहते हैं। चार अक्षर के बाद विराम होता है।

उदाहरण—

म. म. गु. गु. म. म. गु. गु.

ऽऽ ऽ ऽऽऽ ऽ ऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽ ऽ

मौनं ध्यानं भूमौ शय्या, गुर्वी तस्याः कामावस्था।
मेघोत्सङ्गे नृत्तासङ्गा, यस्मिन्काले विद्युन्माला॥

—सुवृत्ततिलक

नोट--श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया हुआ है।

सर्वे वर्णा दीर्घा यस्यां, विश्रामः स्याद्वैदैर्वेदैः।
छन्दोऽध्येतर्विद्वद्वृन्दैः, व्याख्याता सा विद्युमाला॥

'छन्दोमञ्जरी' में इसका उदाहरण इस प्रकार दिया है।

वासोवल्ली विद्युन्माला बर्हश्रेणी शाक्रश्चापः।
यस्मिन्नास्तां तापोच्छित्यै गोमध्यस्थः कृष्णाम्भोदः॥

'सुवृत्ततिलक' में इसका लक्षण निम्नांकित दिया गया है।

मकारयुगपर्यन्ते यत्संयुक्तगुरुद्वयम्।
विद्युन्मालाभिधं तद्धि वृत्तमष्टाक्षरं विदुः॥

माणवकं भात्तलगाः॥ १४॥

भाद्गणात्तलगास्तगण लघुगुरवो यदि तदा माणवकम्। 'माणवकाक्रीडितम्' इति पैङ्गले संज्ञा। पूर्ववद्यतिः।

भावार्थ--जिस छन्द के पाद में भगण (ऽ।।) तगण (ऽऽ।) लघु तथा गुरु होता है उसे **'माणवक'** कहते हैं। यह छन्द पिंगल शास्त्र में 'माणवकाक्रीडित' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें भी पहिले के समान ही चार-चार अक्षरों पर यति होती है।

उदाहरण--

भ. त. ल. गु. भ. त. ल. गु.
ऽ।। ऽऽ। । ऽ ऽ।। ऽऽ। । ऽ

माणवकाक्रीडितकं यः कुरुते वृद्धवयाः।
हास्यमसौ याति जने, भिक्षुरिव स्त्रीचपलः॥

नोट--'श्रुतबोध' इस छन्द का लक्षण इस प्रकार से दिया गया है।

आदिगतं तुर्यगतं पञ्चमकं चान्त्यगतम्।
स्यात् गुरु चेत्कथितं माणवकाक्रीडमिदम्॥

यही श्लोक इस छन्द का उदाहरण भी है।

'छन्दोमञ्जरी' में इसका उदाहरण इस प्रकार दिया है।

चञ्चलचूडं चपलैर्वत्सकुलैः केलिपरम्।
ध्याय सखे! स्मेरमुखं, नन्दसुतं माणवकम्॥

म्नौ गौ हंसरुतमेतत् ॥ १५ ॥

मगण-नगणौ गुरू च द्वावेतद्धंसरुतं नाम।

भावार्थ—जिस छन्द के प्रत्येक पाद में मगण (ऽऽऽ) नगण (।।।) तथा दो गुरु हों, उसे **हंसरुत** कहते हैं।

उदाहरण—

म. न. गु. गु. म. न. गु. गु.

ऽऽऽ।।।ऽऽ ऽऽऽ।।।ऽऽ

अभ्यागामिशशिलक्ष्मी, मञ्जीरक्वणिततुल्यम्।
तीरे राजति नदीनां, रम्यं हंसरुतमेतत् ॥

—छन्दोवृत्ति

र्जौ समानिका गलौ च ॥ १६ ॥

यदि पादे रगण-जगणौ गुरु-लघू च भवन्ति, तदा 'समानिका' नाम वृत्तं भवति।

भावार्थ—जिस छन्द के प्रत्येक पाद में रगण (ऽ।ऽ) जगण (।ऽ।) तथा गुरु व लघु हों उसे **'समानिका'** वृत्त कहते हैं।

उदाहरण—

र. ज. गु. ल. र. ज. गु. ल.

ऽ।ऽ।ऽ।ऽ। ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।

यस्य कृष्ण पादपद्म, मस्ति हृत्तडागसद्म।
धीः समानिका परेण, नोचिताऽत्र मत्सरेण ॥

—छन्दोमञ्जरी

नोट—'छन्दोमञ्जरी' में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया गया है।

ग्लौ रजौ समानिका तु।

प्रमाणिका जरौ लगौ ॥ १७ ॥

जगण-रगणौ लघुगुरू च प्रमाणिका। समान्येव समानिका, प्रमाण्येव प्रमाणिका। स्वार्थे कः प्रत्ययः।

भावार्थ—जिस छन्द के पाद में जगण (।ऽ।) रगण (ऽ।ऽ) तथा लघु और गुरु हों उसे **'प्रमाणिका'** छन्द कहते हैं।

इन समानिका तथा प्रमाणिका छन्दों को 'समानी' तथा 'प्रमाणी' छन्द भी कहते हैं। 'क' प्रत्यय इन शब्दों से केवल स्वार्थ में किया गया है। इन उपर्युक्त 'प्रमाणी' तथा 'समानी' छन्दों को छोड़कर अनुष्टुप् जाति में अन्य जो छन्द हैं उनका सामान्य नाम 'वितान' है। नारायण भट्ट ने वृत्तरत्नाकर की अपनी टीका में लिखा है कि इन 'वितान' छन्दों के नियमन में ह्रस्व दीर्घ (लघु, गुरु) का विचार किया जाता है परन्तु मुझे ऐसा उचित नहीं प्रतीत होता है।

उदाहरण—

ज. र. ल. गु. ज. र. ल. गु.

। S । S । S । S । S । S । S । S

लघु श्रुतं मदोद्धतं, गुरु श्रमाय केवलम् ।
न यत्परोपकारकृद्, वृथैव तत्प्रमाण्यपि ॥

—सुवृत्ततिलक

नोट—'छन्दोमञ्जरी' में इस छन्द का उदाहरण इस प्रकार से दिया गया है।

पुनातु भक्तिरच्युता, सदाच्युताङ्घ्रिपद्मयोः ।
श्रुतिस्मृतिप्रमाणिका, भवाम्बुराशितारिका ॥

'सुवृत्ततिलक' में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार है।

लघोर्गुरोश्च विच्छित्त्यां, यत्रानन्तर्यसङ्गतिः ।
वृत्तप्रमाणनिपुणैः, सा प्रमाणीति कीर्तिता ॥

महाकवि क्षेमेन्द्र ने 'सुवृत्ततिलक' में अनुष्टुप् छन्द के विषय में बहुत-सी उपयोगी तथा मनोरंजक बातों का वर्णन किया है। उसे मैं विद्यार्थियों के लाभ के लिये यहाँ देता हूँ। अनुष्टुप् से छोटे छः सात अक्षर वाले छन्दों में सरस्वती का निवास उसी प्रकार से नहीं होता, जिस प्रकार से भृङ्गी मल्लिका की छोटी कोठी में नहीं रहती। अनुष्टुप् आदि छोटे-छोटे वृत्तों में समास करने से तथा बड़े-बड़े श्लोकों में समास नहीं करने से ही छन्द की शोभा होती है।

न षट्सप्ताक्षरे वृत्ते, विश्राम्यति सरस्वती ।
भृङ्गीव मल्लिकाबालकलिकाकोटिसङ्कटे ॥

समासैर्लघुवृत्तानामसमासैर्महीयसाम् ।
शोभा भवति भव्यानां, उपयोगवशेन वा ॥

इस वृत्त के लक्षण में पञ्चम का लघु तथा षष्ट अक्षर के गुरु होने का जो नियम है वह केवल साधारण नियम है। महान् कवियों के महाकाव्यों में इस नियम का पालन नहीं किया गया है। अतएव जो कान को सुख मालूम दे, जो श्रुति मधुर हो, वही अनुष्टुप् का रूप समझना चाहिये।

अनुष्टुप् छन्दसां भेदे, कैश्चित्सामान्यलक्षणम् ।
यदुक्तं पञ्चमं कुर्यात्, लघु षष्ठं तथा गुरु ॥
तत्राप्यनियमो दृष्टः, प्रबन्धे महतामपि ।
तस्मादव्यभिचारेण, श्रव्यतैव गरीयसी ॥

महाकवि कालिदास के निम्नांकित श्लोक में **अनुष्टुप्** के सामान्य लक्षण का पालन नहीं किया गया है।

तदन्वये शुद्धमतिः, प्रसूतः शुद्धिमत्तरः ।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव ॥

अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग कहाँ कहाँ करना चाहिये, इसका भी बड़ा ही मनोरंजक विवरण मिलता है। श्लोक निम्नांकित है।

आरम्भे सर्गबन्धस्य, कथाविस्तारसंग्रहे ।
शमोपदेशवृत्तान्ते, सन्तः शंसन्त्यनुष्टुभम् ॥

भर्तृमेण्ठ का श्लोक सर्गवन्ध के प्रारम्भ में—

आसीद्दैत्यो हयग्रीवः सुहृद्वेश्मसु यस्य ताः ।
प्रथयन्ति बलं बाह्वोः सितच्छत्रस्मिताः श्रियः ॥

महाकवि कालिदास ने रघुवंश के आदि में भी इसी छन्द का प्रयोग किया है।

अभिनन्द का श्लोक कथाप्रसङ्ग में यथा—

तस्यां निजभुजोद्योगविजितारातिमण्डलः ।
आखण्डल इव श्रीमान् राजा शूद्रक इत्यभूत् ॥

शमोपदेश में क्षेमेन्द्र का श्लोक—

पृथुशास्त्रकथाकन्थारोमन्थेन वृथैव किम् ।
अन्वेष्टव्यं प्रयत्नेन, तत्वज्ञैर्ज्योतिरान्तरम् ॥

महाकवि माघ ने भी 'शिशुपालवध' में राजनीति का उपदेश इसी छन्द में किया है। यथा—

अनुत्सूत्रपदन्यासा, सद्वृतिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति, राजनीतिरपस्पशा ॥

इस छन्द की रचना में अभिनन्द बड़े ही कुशल थे। अन्य महाकवियों ने भी अनुष्टुप् लिखा है परन्तु अभिनन्द के अनुष्टुप् की समता कोई भी नहीं कर सका है।

अनुष्टुप्सततासक्ता, साभिनन्दस्य नन्दिनी।
विद्याधरस्य वदने, गुलिकेव प्रभावभूः ॥

अथ [९] बृहती

रान्सासाविह हलमुखी ॥ १९ ॥

रगणानन्तरं नगण-सगणौ चेदिह छन्दःशास्त्रे हलमुखी नाम वृत्तं भवति। त्रिभिः षड्भिश्च यतिरिति सम्प्रदायः।

भावार्थ—जिन छन्दों के एक पाद से नव (९) अक्षर होते हैं वे 'बृहती' जाति के छन्द हैं। इसी जाति के अन्तर्गत स्थित **हलमुखी** उस छन्द को कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में रगण, नगण तथा सगण होते हैं। तीन तथा छः अक्षर के बाद विराम होता है।

उदाहरण—

र. न. स. र. न. स.
S I S I I I I I S S I S I I I I I S
गण्डयोरतिशयकृशं, यन्मुखं प्रकटदशनम्।
आयतं कलहनिरतां, तां स्त्रियं त्यज हलमुखीम् ॥

—छन्दोवृत्ति

भुजगशिशुभृता नौ मः ॥ २० ॥

द्वाभ्यां नगणाभ्यामेकेन च मगणेन भुजगशिशुभृता नाम वृत्तं भवति। सप्तभिर्द्वाभ्यां च यतिरिति सम्प्रदायः।

भावार्थ—इसी जाति के दूसरे छन्द का नाम **भुजगशिशुभृता** है। इसके प्रत्येक पाद में दो नगण तथा एक मगण होता है। सात तथा दो अक्षरों के बाद विराम होता है।

उदाहरण—

न. न. म. न. न. म.

। । । । । । ऽ ऽ ऽ 　 । । । । । । ऽ ऽ ऽ

इयमधिकतरं रम्या, विकचकुवलय श्यामा ।
रमयति हृदयं यूनां, भुजगशिशुभृता नारी ॥

—छन्दोवृत्ति

अथ [१०] पङ्क्तिः

म्सौ ज्गौ शुद्धविराडिदं मतम् ॥ २१ ॥

मगण-सगणौ जगण-गुरू च तच्छुद्धविराडिदं मतं छन्दोविदाम् । पादान्तेऽत्र यतिः ।

भावार्थ—जिन छन्दों के एक पाद में दस अक्षर होते हैं उन्हें 'पंक्ति' जाति का छन्द कहा जाता है । इसी जाति में वर्तमान '**शुद्धविराट्**' वह छन्द है जिसके प्रत्येक पाद में मगण, सगण, जगण तथा एक गुरु हों । इसमें पाद के अन्त में विराम होता है ।

उदाहरण—

म. स. ज. गु. म. स. ज. गु.

ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

विश्वं तिष्ठति कुक्षिकोटरे, वक्त्रे यस्य सरस्वती सदा ।
अस्मद्वंशपितामहो गुरुः, ब्रह्मा शुद्धविराट् पुनातु नः ॥

—छन्दोवृत्ति

म्नौ ज्गौ चेति पणवनामकम् ॥ २२ ॥

मगण-नगणौ जगण-गुरू चेति पणवनामकम् नाम वृत्तं भवति । पञ्चभिः पञ्चभिश्च यतिः ।

भावार्थ—इसी पंक्ति जाति में वर्तमान '**पणवनामक**' उस छन्द को कहते हैं जिसके एक पाद में मगण, नगण, जगण एक गुरु हों । इस छन्द में पाँच अक्षरों पर विराम होता है ।

उदाहरण—

म. न. ज. गु. म. न. ज. गु.

S S S I I I I S I S S S S I I I I S I S

भक्ता ये शरणमुपागताः, तेषां नो चिकुरमपि प्रभुः ।
छेत्तु कोऽपि जगति हे शिवे ! तेऽयं कीर्तिपणवनिःस्वनः ॥

र्जौ रगौ मयूरसारिणी स्यात् ॥ २३ ॥

रगण-जगण-रगण-गुरुभिः मयूरसारिणि स्यात् ।

भावार्थ—जिस छन्द के पाद में रगण, जगण, रगण तथा एक गुरु होता है उसे **'मयूरसारिणी'** नामक छन्द कहते हैं । पाद के अन्त में यति होती है ।

उदाहरण—

र. ज. र. गु. र. ज. र. गु.

S I S I S I S I S S S I S I S I S I S S

या वनान्तराण्युपैतिरन्तुं, या भुजङ्गभोगमुक्तचित्ता ।
या द्रुतं प्रयाति सन्नतां सा, तां मयूरसारिणीं विजह्यात् ॥

—छन्दोवृत्ति

भ्मौ सगयुक्तौ रुक्मवतीयम् ॥ २४ ॥

भगण-मगण-सगणैः गुरुणा च रुक्मवती नाम वृत्तं भवति । चम्पकमालेत्यन्ये । पादान्ते यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द से एक पाद में भगण, मगण, सगण तथा एक गुरु होता है उसे **'रुक्मवती'** छन्द कहते हैं । इसी को कुछ लोग 'चम्पकमाला' भी कहते हैं । पाद के अन्त में विराम होता है ।

उदाहरण—

भ. म. न. गु. भ. भ. स. गु.

S I I S S S I I S S S I I S S S I I S S

भग्नमसत्यैः कायसहस्त्रैः, मोहमयी गुर्वी तव माया ।
स्वप्नविलासा योगवियोगा रुक्मवती हा कस्य कृते श्रीः ॥

—सुवृत्ततिलक

नोट—श्रुतबोध में इस छन्द को 'चम्पकमाला' कहा गया है तथा इसका लक्षण इस प्रकार दिया हुआ है।

तन्वि ! गुरुः स्यात् आद्यचतुर्थं पञ्चमषष्ठं चान्त्यमुपान्त्यम् ।
इन्द्रियबाणैर्यत्र विरामः सा कथनीया चम्पमाला ॥

मत्ता ज्ञेया मभसगयुक्ता ॥ २५ ॥

म-भ-स-गण-गुरुयुता मत्ता नामवृत्तं भवति। चतुर्भिः षड्भिश्च यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द के एक पाद में मगण, भगण, सगण तथा एक गुरु होता है उसे **'मत्ता'** नामक छन्द कहते हैं। इस छन्द में चार तथा छः अक्षरों पर विराम होता है।

उदाहरण—

म. भ. स. गु. म. म. स. गु.
S S S S I I I I S S S S S S I I I I S S

पीत्वा मत्ता मधु मधुपाली, कालिन्दीये तटवनकुञ्जे।
उद्दीव्यन्तीर्व्रजजनरामाः, कामासक्ता मधुजिति चक्रे ॥

—छन्दोमञ्जरी

नरजगैर्भवेन्मनोरमा ॥ २६ ॥

नगण-रगण-जगणैः गुरुभिश्च 'मनोरमा' नाम वृत्तं भवति। पादान्ते यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द के पाद में नगण, रगण तथा जगण हो तथा एक अक्षर गुरु हो उसे **'मनोरमा'** छन्द कहते हैं। इसमें पाद के अन्त में विराम होता है।

उदाहरण—

न. र. ज. गु. न. र. ज. गु.
I I I S I S I S I S I I I S I S I S I S

तरणिजातटे विहारिणी, व्रजविलासिनी विलासतः ।
मुररिपोस्तनुः पुनातु वः, सुकृतशालिनां मनोरमा ॥

—छन्दोमञ्जरी

त्जौ जो गुरुणेयमुपस्थिता ॥ २७ ॥

त-ज-जगण-गुरुभिरुपस्थिता नाम वृत्तं भवति। पादान्ते यतिः। द्वाभ्यामष्टभिश्चेत्येके।

भावार्थ—जिस छन्द के प्रत्येक पाद में तगण, जगण, जगण (दो जगण) तथा एक गुरु हो, उसे **'उपस्थिता'** नामक छन्द कहते हैं।

उदाहरण—

त. ज. ज. गु. त. ज. ज. गु.

S S I I S I I S I S S S I I S I I S I S

एषा जगदेकमनोहरा, कन्या कनकोज्ज्वलदीधितिः।
लक्ष्मीरिव दानवसूदनं, पुण्यैर्नरनाथमुपस्थिता॥

—छन्दोमञ्जरी

अथ [११] त्रिष्टुप्

जिन छन्दों के एक पाद में ग्यारह (११) अक्षर होते हैं अर्थात् जिन छन्दों के पाद एकादश अक्षरात्मक हैं वे सब छन्द त्रिष्टुप् जाति के कहे जाते हैं। इस में (इस त्रिष्टुप् जाति में) अनेक छन्दों की गणना है उन्हें नीचे क्रमशः दिया जाता है।

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः॥ २८॥

त-त-जगणैर्गुरुभ्यां चेन्द्रवज्रा नाम वृत्तं भवति। पादे यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द के प्रत्येक पाद में दो तगण, जगण तथा दो गुरु हों **इन्द्रवज्रा** छन्द कहते हैं। इस छन्द में पाद में विराम होता है।

उदाहरण—

त. त. ज. गु. गु.

S S I S S I I S I S S

ये दुष्टलोका इहभूमिलोके,
द्वेषं व्यधुर्गोद्विजदेवसङ्घे।
तानिन्द्रवज्रादपि दारुणाङ्गान्,
व्याजीवयद् यः सततं नमस्ते॥

—छन्दोवृत्ति

नोट—श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया हुआ है।

यस्यास्त्रिषट् सप्तममक्षरं स्यात् ह्रस्वं सुजङ्घे ! नवमं च तद्वत्।
गत्या विलज्जीकृत हंसकान्ते ! तामिन्द्रवज्रां ब्रुवते कवीन्द्राः॥

छन्दोमञ्जरी में इस छन्द का उदाहरण निम्नांकित है।

गोष्ठे गिरिं सव्यकरेण धृत्वा, रुष्टेन्द्रवज्राहतिमुक्तवृष्टौ।
यो गोकुलं गोपकुलं च सुस्थं चक्रे स नो रक्षतु चक्रपाणिः॥

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ॥ २९॥

ज-त-जगणा गुरू चोपेन्द्रवज्रा नाम वृत्तं भवति। पूर्वोक्तैव यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द के पाद में जगण, तगण, जगण तथा दो गुरु हों तो उसे उपेन्द्रवज्रा छन्द कहते हैं। इसमें में भी इन्द्रवज्रा के समान ही विराम होता है।

उदाहरण—

ज. त. ज. गु. गु.
। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
जितो जगत्येषभवभ्रमस्तै-
र्गुरूदितं ये गिरिशं स्मरन्ति।
उपास्यमानं कमलासनाद्यैः,
उपेन्द्रवज्रायुधवारिनाथैः॥

—सुवृत्ततिलक

नोट—श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार किया हुआ है।

यदीन्द्रवज्राचरणेषु पूर्वे, भवन्ति वर्णाः लघवः सुवर्णे।
अमन्दमाद्यन्मदने तदानीमुपेन्द्रवज्रा कथिताकवीन्द्रैः॥

इस छन्द का सबसे सुन्दर मुद्रालंकारविशिष्ट उदाहरण महाकवि **जयदेव** ने अपने 'गीतगोविन्द' में किया है।

स्मरातुरां दैवतवैद्यहृद्य त्वदङ्ग सङ्गामृतमात्रसाध्याम्।
निवृत्तबाधां कुरुषे न राधां, उपेन्द्र वज्रादपि दारुणोऽसि॥

अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः॥ ३॥

इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोः सम्मेलनमुपजातिः।

भावार्थ—जिस छन्द में इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा आपस में मिले रहते हैं उसे **उपजाति** कहते हैं। अर्थात् जिस वृत्त में कुछ पाद इन्द्रवज्रा तथा कुछ पाद उपेन्द्रवज्रा के होते हैं उसे उपजाति कहते हैं।

अब प्रश्न यह है कि उपजाति में कितने चरण इन्द्रवज्रा के होने चाहिये तथा कितने उपेन्द्रपज्रा के? इसका उत्तर यह है कि कम से कम एक-एक पाद तो इन दोनों छन्दों का उपजाति में अवश्य ही होना चाहिये। यदि इन्द्रवज्रा का एक पाद तथा उपेन्द्रवज्रा के तीन पाद हों, यदि दोनों के दो-दो पाद हों, यदि तीन पाद इन्द्रवज्रा के हों तथा शेष एक उपेन्द्रवज्रा का, अथवा यदि तीन चरण उपेन्द्रवज्रा के हों और एक चरण इन्द्रवज्रा का—इन सब दशाओं में उपजाति छन्द का निर्माण होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उपेन्द्र-वज्रा तथा इन्द्रवज्रा इन दोनों छन्दों के कितने पाद रखने से उपजाति बनेगा इसका कोई नियम नहीं है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि इतने पाद इन्द्रवज्रा के होने चाहिये तथा इतने उपेन्द्रवज्रा के। परन्तु हाँ इन दोनों छन्दों का कम से काम एक पाद तो नितान्त ही आवश्यक है।

उदाहरण—(कालिदास)

उ० ततः सुनन्दावचनाऽवसाने,
इ० लज्जां तनूकृत्य नरेन्द्रकन्या।
इ० दृष्टया प्रसादाऽमलया कुमारं,
इ० प्रत्यग्रहीत्संवरणस्रजेव ॥

नोट—श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार से दिया है।

यत्र द्वयोरप्यनयोस्तु पादा, भवन्ति सीमन्तिनि! चन्द्रकान्ते।
विद्वभिराद्यैः परिकीर्तिता सा, प्रयुज्यतामित्युपजातिरेषा ॥

सुवृत्ततिलक में इस छन्द के विषय में अनेक उपयोगी बातें दी गई हैं। उपर कहा जा चुका है कि इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा इन दोनों के पादों के संमिश्रण से उपजाति बनता है। अब किस छन्द के पाद को प्रथम स्थान मिलना चाहिये? महाकवि क्षेमेन्द्र का मत है कि जिस पाद में लघु अक्षर हों उसे ही उपजाति में प्रथम पाद में स्थान मिलना चाहिये। अर्थात् उपेन्द्रवज्रा का चरण प्रथम रखना चाहिये। आप कहते हैं—

उपजातिविकल्पानां, सिद्धो यद्यपि सङ्करः।
तथापि प्रथमं कुर्यात्, पूर्वपादाक्षरं लघु ॥

यथा—(श्रीमत् उत्पलराज का श्लोक)—

उ० हृताञ्जनश्यामरुचस्तवैते,

इ० स्थूलाः किमित्यश्रुकणाः पतन्ति ।

ई० भृङ्गा इव व्यायतपङ्क्तयो ये,

उ० तनीयसीं रोमलतां श्रयन्ति ॥

जिस प्रकार तीक्ष्णमुखवाला सूत्र सूची में शीघ्र प्रवेश कर जाता है उसी प्रकार लघु अक्षर से प्रारम्भ होने वाला श्लोक शीघ्र ही कान में घुस जाता है तथा अपनी सरलता को नहीं छोड़ता है। जिस प्रकार मोटा तथा ग्रन्थियुक्त सूत्र सूची (सुई) में प्रवेश नहीं कर सकता है उसी प्रकार से गुरु अक्षर से प्रारम्भ होने वाला श्लोक कर्णकटु मालूम होता है तथा उसे सुनने की इच्छा नहीं होती। यथा—

(कालिदास का श्लोक)—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य, स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥

क्षेमेन्द्र का मत है कि सुन्दर नायिका के रूप वर्णन, बसन्त तथा उसके अङ्गीभूत पुष्पपत्रादि के वर्णन में उपजाति छन्द बहुत ही सुन्दर होता है।

शृङ्गारालम्बनोदार-नायिकारूपवर्णनम् ।
बसन्तादि तदङ्गं च, सच्छायमुपजातिभिः ॥

यथा (कालिदास का रूप वर्णन)—

मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या, वलित्रयं चारु बभार बाला ।
आरोहणार्थं नवयौवनस्य, कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् ॥

यथा (कालिदास का बसन्त वर्णन)—

बालेन्दुवक्राण्यविकासभावाद्बभुः पलाशान्यति लोहितानि ।
सद्यो वसन्तेन समागतानां, नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् ॥

आधुनिक व्याकरण के प्रवर्तक तथा निर्माता महावैयाकरण पाणिनि उपजाति लिखने में बड़े ही सिद्धहस्त थे। क्षेमेन्द्र ने लिखा है कि—

स्पृहणीयत्वचरितं पाणिनेरुपजातिभिः ।
चमत्कारैकसाराभिरुद्यानस्येव जातिभिः ॥

उदाहरण—(जाम्बवतीजय से)

निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो, मुखं निशायामभिसारिकायाः ।
धारानिपातैः सह किन्नु वान्तश्चन्द्रोऽयमित्यार्ततरं ररास ॥

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु ।
स्मरन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥ ३१ ॥

अन्यास्वपि त्रिष्टुभादिजातिष्वित्थं सामान्यसंख्याऽक्षरत्व-समानयतिकत्वादि-प्रकारेण मिश्रितासु इदमेवोपजाति नाम वृद्धाः स्मरन्ति ।

भावार्थ—जिस प्रकार से त्रिष्टुप् जाति में होने वाले इन्द्रवज्रा और उपेन्द्र-वज्रा के मिश्रण को उपजाति कहते हैं उसी प्रकार से 'जगती' जाति (रूप) में परिगणित इन्द्रवंशा और वंशस्थ नामक वृत्तों के मिश्रण को भी विद्वान् लोग **उपजाति** ही कहते हैं ।

उदाहरण—इन्द्रवंशा और वंशस्थ का मिश्रण, यथा—

इत्थं रथाश्वेभ निषादिनां प्रगे, गणो नृपाणामथ तोरणाद्बहिः ।
प्रस्थानकालक्षमवेषकल्पना, कृतक्षणक्षेपमुदैक्षताच्युतम् ॥
(शि० व० १२-१)

नजजलगैर्गदिता सुमुखी ॥ ३२ ॥

नगण-जगण-जगणैः लघुगुरुभ्यां च सुमुखी नाम वृत्तं भवति । पञ्चभिः षड्भिश्च यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द के प्रत्येक पाद में नगण, दो जगण और अन्त में लघ और गुरु हों, तो उसे सुमुखी नामक छन्द कहते हैं ।

उदाहरण—

न. ज. ज. ल. गु.

। । । । ऽ । । ऽ । । ऽ

तरणिसुतातटकुञ्जगृहे
वदनविधुस्मितदीधितिभिः ।
तिमिरमुदस्य मुखं सुमुखी
हरिमवलोक्य चुचुम्ब चिरम् ॥

दोधकवृत्तमिदं भभभाद्गौ ॥ ३३ ॥

भगणत्रयाद्गुरुद्वयं चेद्दोधकं नाम वृत्तं भवति।

भावार्थ—जिस छन्द के प्रत्येक पाद में तीन भगण हों तथा उसके पश्चात् दो गुरु हों, उसे **दोधक** नामक छन्द कहते हैं।

उदाहरण—

भ. भ. भ. गु. गु.

S I I S I I S I I S S

दोधकमर्थविरोधकमुग्रं
स्त्रीचपलं युधि कातरचित्तम्।
स्वार्थपरं मतिहीनममात्यं
मुञ्चति यः नृपतिः स सुखी स्यात्॥

—छन्दोवृत्ति

श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया है।

आद्यचतुर्थमहीननितम्बे! सप्तमकं दशमं च तथान्त्यम्।
यत्र गुरु प्रकटस्मरस्मोर! तत्कथितं ननु दोधक वृत्तम्॥

दोधक छन्द के विषय में क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्ततिलक में लिखा है कि तीन तीन अक्षर पर जब यति होती है तब वह बहुत अच्छा लगता है। इससे कम और अधिक पर यति हो सकती है।

तीन-तीन अक्षर पर यति यथा—

सज्जनपूजनशीलनशोभा भर्जय वर्जय दुर्जनसङ्गम्।
दुस्तरसंसृतिसागरवेगे मज्जनकारणवारणमेतत्॥

नोट—प्रायः यह छन्द हास्य रस में ही प्रयुक्त किया जाता है। इस छन्द में श्रृङ्गार रस के वर्णन को साहित्यशास्त्रियों ने अनुचित माना है क्योंकि उपर्युक्त वर्णन हास्योत्पादक होता है।

शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः॥ ३४॥

भगण-तगण-तगणैः गुरुभ्यां च शालिनी नाम वृत्तं भवति। अब्धिभिश्चतुर्भिः लोकैः सप्तभिश्च यतिरिति शेषः।

भावार्थ—जिस छन्द में एक मगण और दो तगण हों और अन्त में दो गुरु हों उसे **शालिनी** छन्द कहते हैं। इसमें चार और सात अक्षर के बाद यति अथवा विराम होता है।

उदाहरण—

म. त. त. गु. गु.

ऽऽ ऽ ऽ ऽ।ऽऽ।ऽ ऽ

मत्ता गोष्ठी गर्भमूढ़प्रलापा
प्रौढ़ा गाढ़ालिङ्गिता यौवनेन।
मध्वाताम्रस्वेदमीलत्कपोला
लोला लीलाशालिनी कस्य नेष्टा ॥

—सुवृत्ततिलक

श्रुतबोध में इसका लक्षण निम्नांकित है।

ह्रस्वो वर्णो जायते यत्र षष्ठः, कम्बुग्रीवे ! तद्वदेवाष्टमान्त्यः।
विश्रामः स्यात्तन्वि ! वेदैस्तुरङ्गैः, तां भासन्ते शालिनीं छान्दसीयाः ॥

क्षेमेन्द्र ने शालिनी छन्द के विषय में बहुत-सी उपयोगी बातें लिखी हैं। आप कहते हैं कि शालिनी छन्द श्लथबन्धा स्त्री की तरह स्वभाव से ही अच्छा लगता है। जिस प्रकार मन्द दीये की शिखा को तेज कर देने से वह अधिक प्रकाश करता है उसी प्रकार इसे प्रयत्नपूर्वक उत्तेजित करना चाहिए। अन्त में श और त्र से संयुक्त अक्षरों के रखने से (जो कि कर्कशता के सूचक होते हैं) तथा विसर्ग के अन्त में विधान करने से शालिनी दीप्त हो जाती है।

शालिनी श्लथबन्धैव स्वभावेन विभाव्यते।
उत्तेजन्तां प्रयत्नेन मन्ददीपशिखामिव ॥
शत्रन्ताक्षरसंयोगैः किञ्चित्कार्कश्यकारिभिः।
अन्ते विसर्जनीयैश्च शालिनी याति दीप्तताम् ॥ २ ॥

उपर्युक्त लक्षणों से विशिष्ट शालिनी का उदाहरण:—

लज्जामज्जल्लोलतारान्तकान्ता-
स्तिर्यङ्निर्यत्केतकीपत्रतीक्ष्णाः।
मग्नाश्चित्ते कस्य निर्यान्ति भूयः
प्रेमोन्मीलत्पक्ष्मलाक्षी कटाक्षाः ॥

वातोर्मीयं कथिता म्भौ तगौ गः ॥ ३५ ॥

मगण-भगण-तगणैः गुरुभ्यां युता वातोर्मी नाम वृत्तं भवति। शालिनीछन्दवत् चतुर्भिः सप्तभिश्च यतिः भवति।

भावार्थ—जिस छन्द में मगण, भगण और तगण हों और अन्त में दो गुरु हों, उसे **वातोर्मी** नामक छन्द कहते हैं। शालिनी छन्द के समान ही इसमें भी चार और सात अक्षरों के बाद विराम होता है।।

उदाहरण—

म. भ. त. गु. गु.

ऽ ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ । ऽ ऽ

यात्युत्सेकं सपदि प्राप्य किञ्चित्
स्याद्वा यस्याश्चपला चित्तवृत्तिः।
या दीर्घाङ्गी स्फुटशब्दाट्टहासा-
त्याज्या सा स्त्री द्रुतवातोर्मिमाला।।

—छन्दोवृत्ति

बाणरसैः स्याद्भत-नगगैः श्रीः ।। ३६ ।।

भगण-तगण-नगणैः गुरुभ्यां च पञ्चभिः षड्भिश्च यतो श्री नाम वृत्तं भवति।

भावार्थ—जिस छन्द में भगण तगण और नगण हों और अन्त में दो गुरु हों उसे श्री छन्द कहते हैं। इसमें पाँच और छः अक्षरों पर विराम होता है।

उदाहरण—

भ. त. न. गु. गु.

ऽ । । ऽ ऽ । । । । ऽ ऽ

शोभनवर्णा सुविशदजातिः
सुक्रमराजद्गुरुलघुयुक्ता ।
सद्यति रम्या बुधहृदि छन्दो
मौक्तिकमाला विलसति हृद्या ।।

—छन्दोमञ्जरी

नोट—श्री छन्द को ही मौक्तिकमाला छन्द कहते हैं। अतः दोनों के लक्षण और उदाहरण समान ही हैं।

म्भौ न्लौ गः स्याद् भ्रमरविलसितम् ।। ३७ ।।

मगण-भगण-नगण-लघु-गुरुभिः भ्रमरविलसितं नामकं छन्दः भवति। चतुर्भिः सप्तभिश्च यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में मगण, भगण, नगण तथा अन्त में लघु और गुरु होता है उसे **भ्रमरविलसित** छन्द कहते हैं। चार और सात अक्षरों के बाद विराम होता है।

उदाहरण—

म. भ. न. ल. गु.

S S S S I I I I I I S

मुग्धे मानं परिहर नचिरात्
तारुण्यं ते सफलयतु हरिः।
फुल्ला वल्ली भ्रमरविलसिताऽ-
भावे शोभां कलयति किमु ताम्॥

—छन्दोमञ्जरी

रान्नराविह रथोद्धता लगौ॥ ३८॥

रगण-नगण-रगणैः लघुगुरुभ्यां च रथोद्धता नाम वृत्तं भवति। पादे यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में रगण, नगण तथा पुनः रगण हो और अन्त में लघु और गुरु हों उसे **रथोद्धता** नामक छन्द कहते हैं। इस छन्द में पाद के अन्त में ही विराम होता है, बीच में नहीं।

उदाहरण—

र. न. र. ल. गु.

S I S I I I S I S I S

किं त्वया सुभटदूरवर्जितं
नात्मनो न सुहृदां प्रियं कृतम्।
यत्पलायनपरायणस्य ते
याति धूलिरधुना रथोद्धता॥

—नाट्यशास्त्र

श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण निम्नांकित है।

आद्यमक्षरमतस्तृतीयकं सप्तमं च नवमं तथान्तिमम्।
दीर्घमिन्दुमुखि! यत्र जायते, तां वदन्ति कवयो रथोद्धताम्॥

कालिदास ने रघुवंश के एकादश सर्ग में इसी छन्द का पूर्णतया व्यवहार किया है और यह सम्पूर्ण सर्ग इसी छन्द में लिखा गया है। उदाहरण—

कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो, राममध्वरविघातशान्तये।
काकपक्षधरमेत्य याचितः, तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ॥ ११।१

क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलक में रथोद्धता के विषय में लिखा है कि जिस प्रकार लटभा (?) अपनी कला के परिचय से प्रगल्भता को प्राप्त करती है उसी प्रकार से रथोद्धता पाद के अन्त में आने वाले विसर्ग से युक्त होकर सुशोभित होती है। तथा जिस प्रकार बिना प्रार्थना किये हुए ही प्रेम करने वाली मानिनी स्त्री म्लानमुखी हो जाती है उसी प्रकार पाद के अन्त में विसर्ग से हीन रथोद्धता प्रभा (सुन्दरता) से हीन हो जाती है।

विसर्गयुक्तैः पादान्तैः विराजति रथोद्धता।
कलापरिचयैर्याता लटभेव प्रगल्भताम् ॥
अविसर्गैस्तु पादान्तैर्निष्प्रभैव रथोद्धता।
अप्रार्थनाप्रणयिनी म्लानमानेव मानिनी ॥

विसर्गयुक्त सुन्दर रथोद्धता का उदाहरण—

अत्र चैत्रसमये निरन्तराः, प्रोषिता हृदयकीर्णपावकाः।
वान्ति कामुकमनोविमोहना, व्याललोलमलयाचलानिलाः ॥

क्षेमेन्द्र ने इस छन्द की उपयोगिता के विषय में लिखा है कि यह छन्द चन्द्रोदय आदि विभावों के वर्णन में अधिक उपयुक्त समझा जाता है तथा इस छन्द में विभावों का वर्णन सुन्दर तथा रमणीय होता है।

रथोद्धता विभावेषु भव्या चन्द्रोदयादिषु।

कालिदास के द्वारा विभाव का वर्णन। यथा—

अङ्गुलीभिरिव केशसञ्चयं सन्नियम्य तिमिरं मरीचिभिः।
कुड्मलीकृतसरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशी ॥

स्वागतेति रनभाद्गुरुयुग्मम् ॥ ३९ ॥

रगणनगणभगणेभ्यः परं गुरुयुग्मं यदि तदेत्येवं स्वागता। पूर्ववत् यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में रगण, नगण और भगण के पाद में दो गुरु हों उसे **स्वागता** छन्द कहते हैं। इसमें रथोद्धता के समान ही पाद के अन्त में ही यति अथवा विराम होता है।

उदाहरण—

र. न. भ. गु. गु.

S I S I I I S I I S S

रत्नभङ्गविमलैर्गुणतुङ्गै-
र्थिनामभिमतार्पणसक्तैः ।
स्वागताभिमुखनम्रशिरस्कैः
जीव्यते जगति साधुभिरेव ॥

—सुव्रततिलक

श्रुतबोध में इसका लक्षण इस प्रकार दिया है ।

अक्षरं च नवमं दशमं चेत्, व्यत्ययाद्भवति यत्र विनीते ।
प्रोक्तमेणनयने यदि सैव, स्वागतेति कविभिः कथिताऽसौ ॥

क्षेमेन्द्र ने इस छन्द के विषय में लिखा है कि—

साकाराद्यैर्विसर्गान्तैः सर्वपादैः सविभ्रमा ।
स्वागता स्वागता भाति, कविकर्मविलासिनी ॥

एक अर्थात् आकार जिसके आदि में हो और विसर्ग जिसके अन्त में हो तथा सब पादों में विलास से युक्त स्वागता छन्द का सब स्वागत करते हैं क्योंकि यह सब को अच्छी लगती है ।

उपर्युक्त विशषताओं से युक्त स्वागता का उदाहरण—

व्यावलन्ति तरला जलधाराः, पान्थसंगमधृतेः परिहाराः ।
प्रान्तरत्ननिभ विद्युदुदाराः, प्रावृषः पृथुपयोधरहाराः ॥

ननसगगुरुरचिता वृन्ता ॥ ४० ॥

न-न-स-ग-गुरुकृता वृन्ता नाम । चतुर्भिः सप्तभिश्च यतिः ।

भावार्थ—जिसमें दो नगण, एक सगण और अन्त में दो गुरु हों, उसे **वृन्ता छन्द** कहते हैं । चार और सात के बाद विराम होता है ।

उदाहरण—

न. न. स. गु. गु.

I I I I I I I I S S S

द्विजगुरुपरिभवकारी यो
नरपतिरतिधनलुब्धात्मा ।

ध्रुवमिहनिपतति पापाऽसौ
फलमिह पवनहतं वृन्तात् ॥

ननरलगुरुभिश्च भद्रिका ॥ ४१ ॥

नगण-नगण-रगणैः लघुगुरुभ्यां च भद्रिका नाम वृत्तं भवति । पादे यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में दो नगण और एक रगण हो तथा अन्त में लघु और गुरु हों उसे **भद्रिका** कहते हैं । इस छन्द में पाद के अन्त में यति होती है ।

उदाहरण—

न. न. र. ल. घु.
। । । । । । ऽ । ऽ । ऽ

सकलदुरितनाशकारिणी
मदभिलषितकामपूरिणी ।
भगवति तव मूर्तिरेकिका
मम मनसि सदास्तु भद्रिका ॥

श्येनिका रजौ रलौ गुरुर्यदा ॥ ४२ ॥

रगण-जगण-रगणै लघुगुरुभ्यां च श्येनिका नाम वृत्तं भवति । पादे यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में रगण, जगण और पुनः एक रगण हो और अन्त लघु एवं गुरु हो उसे **श्येनिका** नामक वृत्त कहते हैं । इसके पाद के अन्त में यति होती है ।

उदाहरण—

र. ज. र. ल. गु.
ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ

क्रूरदृष्टिरायताग्रनासिका
चञ्चलाकठोरतीक्ष्णनादिनी ।
युद्धकाङ्क्षिणी सदाऽऽमिषप्रिया
श्येनिकेव सा विगर्हितानना ॥

मौक्तिकमाला यदि भतनाद्गौ ॥ ४३ ॥

नोट—इस छन्द का दूसरा नाम 'श्री' भी है तथा दोनों के लक्षण भी एक

ही है। चूंकि 'श्री' छन्द के प्रसंग में इसका लक्षण और उदाहरण स्पष्ट कर दिया गया है। अतः यहाँ पर उसे लिखने की पुनः आवश्यकता नहीं है।

उपस्थितमिदं ज्सौ ताद्गकारौ ॥ ४४ ॥

जगण-सगण-तगणैर्गुरुभ्यां च उपस्थितं नाम वृत्तं भवति। पादे यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में जगण, सगण और तगण हों और अन्त में दो गुरु हो उसे **उपस्थित** नामक छन्द कहते हैं। इसके पाद के अन्त में यति होती है।

उदाहरण—

ज. स. त. गु. गु.

। S । । । S S S । S S

जगज्जननि विद्वच्चित्तसंस्थे
समग्रजडतानाशैकदक्षे।
सनाथय तव द्वारस्य मध्ये
उपस्थितमपाङ्गालोकनेन ॥

नोट—उपस्थित छन्द की समाप्ति के साथ ही त्रिष्टुप् जाति में आने वाले उन समस्त छन्दों का वर्णन यहाँ समाप्त हो जाता है जिनमें ११ अक्षर होते हैं। अब 'जगती' नामक जाति यहाँ से प्रारम्भ होती है। इस जाति में आने वाले छन्दों में वंशस्थ, इन्द्रवंशा, तोटक तथा द्रुतविलम्बित आदि प्रसिद्ध हैं। इन छन्दों में प्रत्येक पाद १२ अक्षरों का होता है।

अथ [१२] जगती

चन्द्रवर्त्म निगदन्ति रनभसैः ॥ ४५ ॥

रगण-नगण-भगण-सगणैः चन्द्रवर्त्म नाम वृत्तं भवति। चतुर्भिरष्टभिश्च यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में रगण, नगण, भगण तथा सगण हों वह **चन्द्रवर्त्म** नामक वृत्त होता है। चार और आठ अक्षरों के बाद यति होती है।

उदाहरण—

र न भ स

S । S । । । S । । । । S

चन्द्रवर्त्म विहितं घनतिमिरैः
राजवर्त्म रहितं जनगमनैः।

दृष्टवर्त्म तदलङ्कुरु सरसे
कुञ्जवर्त्मनि हरिस्तव कुतुकी ॥

—छन्दोमञ्जरी

जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ॥ ४६ ॥

जगण-तगण-जगण-रगणैः सहितं वंशस्थं नाम वृत्तं भवति । पादे यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में जगण, तगण, जगण और अन्त में रगण हो, उसे **वंशस्थ** नामक छन्द कहते हैं । इसके पाद के अन्त में विराम होता है ।

उदाहरण—

ज त ज र
।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ
जनस्य तीव्रातपजार्तिवारणा
जयन्ति सन्तः सततं समुन्नताः ।
सितातपत्रप्रतिमा विभान्ति ये
विशाल वंशस्थतया गुणोचिताः ॥

—सुवृत्ततिलक

श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

उपेन्द्रवज्राचरणेषु सन्ति चेदुपान्त्यवर्णा लघवः परे कृताः ।
मदोल्लसद्भ्रूजितकामकार्मुके ! वदन्ति वंशस्थविलं बुधास्तदा ॥

संस्कृत के कवियों में कालिदास, भारवि तथा श्रीहर्ष ने अपने काव्यों में इसका प्रचुरतया प्रयोग किया है। श्रीहर्ष ने तो अपने नैषधीयचरित में अनेक सर्गों की रचना सम्पूर्णतया केवल इसी छन्द में की है। उदाहरण (कालिदास के रघुवंश से)—

शरीरसादादसमग्रभूषणा, मुखेन सालक्ष्यत लोध्रपाण्डुना ।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका, प्रभातकल्पाशशिनेव शर्वरी ॥

अन्य उदाहरण (श्रीहर्ष के नैषधीयचरित से)—

शितांशुवर्णैः वयति स्म तद्गुणैः, महासिवेम्नः सहकृत्वरी बहुम् ।
दिगाङ्गनाङ्गावरणं रणाङ्गणे; यशःपटं तद्भटचातुरी तुरी ॥

दूसरा उदाहरण (नैषध से)—

गिरः श्रुता एव तव श्रवः सुधाः, श्लथा भवन्नाम्नि तु न श्रुतिस्पृहा ।
पिपासुता शान्तिमुपैति वारिजा, न जातु दुग्धान्मधुनोऽधिकादपि ॥

क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलक में वंशस्थ के विषय में लिखा है कि जब इस छन्द में समस्तपद अर्थात् दीर्घसमासयुक्ता पदावली होती है, प्रत्येक पाद में सन्धि का विच्छेद हो अर्थात् एक पाद की दूसरे पाद से सन्धि न हो तथा प्रत्येक पाद के अन्त में विसर्ग हो तब यह अत्यन्त सुन्दर लगता है ।

ससमस्तपदैः पादसन्धिविच्छेदसुन्दरम् ।
सर्वपादैर्विसर्गान्तैः वंशस्थं यात्यनर्घताम् ॥

उपर्युक्त लक्षणों से विशिष्ट वंशस्थ का उदाहरण (बाणभट्ट की कादम्बरी से)—

जयन्ति बाणासुरमौलिलालिता, दशास्यचूडामणिचक्रचुम्बिनः ।
सुरासुराधीशशिखान्तशायिनः, तमश्छिदस्त्र्यम्बकपादपांसवः ॥

इस श्लोक में पदावली समासगर्भा है, प्रत्येक चरण में सन्धिविच्छेद है तथा पादान्त में विसर्ग हैं । अतः इसे उत्कृष्ट वंशस्थ का उदाहरण समझना चाहिये ।

क्षेमेन्द्र ने यह भी लिखा है कि इस वंशस्थ वृत्त का प्रयोग षाड्गुण्य से युक्त राजनीति के वर्णन में अधिक समुचित होता है । राजनीति का वर्णन इसी छन्द में खरा उतरता है ।

साड्गुण्यप्रगुणा नीतिर्वंशस्थेन विराजते ॥

भारवि का राजनीति का वर्णन यथा—

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं, भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः ॥

—किरात० १।३०

क्षेमेन्द्र की सम्मति में संस्कृत कवियों में भारवि वंशस्थ लिखने में अत्यन्त निपुण हैं । इनकी कविता ने इस वृत्त को अपने आश्रय में लिया है ।

वृत्तच्छत्रस्य सा कापि वंशस्थस्य विचित्रता ।
प्रतिभा भारवेर्येन सच्छायेनाधिकीकृता ॥

भारवि के वंशस्थ का उदाहरण—

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती कचाचितौ विष्वगिवागजौ गजौ।
कथन्त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ, विलोकयन्नुत्सहसे न बाधितुम् ॥

—किरात० १।३६

स्यादिन्द्रवंशा ततजै रसंयुतैः ॥ ४७ ॥

तगण-तगण-जगणैः रसंयुतैः रगणसहितैरिन्द्रवंशा नाम वृत्तं भवति। पादे यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में दो तगण, एक जगण और अन्त में एक रगण हो उसे **इन्द्रवंशा** कहते हैं। इसके पाद के अन्त में यति होती है।

उदाहरण—

त. त. ज. र.

S S I S S I I S I S I S

कुर्वीत यो देवगुरुद्विजन्मना-
मुर्वीपतिः पालनमर्थलिप्सया।
तस्येन्द्रवंशेऽपि गृहीतजन्मनः,
सञ्जायते श्रीः प्रतिकूलवर्तिनी ॥

नोट—जब वंशस्थ और इन्द्रवंशा इन दोनों छन्दों के कतिपय पादों का मिश्रण एक छन्द में हो जाता है तो उसे भी उपजाति छन्द कहते हैं। इस बिषय का वर्णन पहिले किया जा चुका है।

इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम् ॥ ४८ ॥

अम्बुधिसैः चतुर्भिः सगणैः युक्तं तोटकं नाम वृत्तं भवति। पादे यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में चार सगण हों उसे **तोटक** छन्द कहते हैं। इसके पाद के अन्त में विराम होता है।

उदाहरण—

स. स. स. स.

I I S I I S I I S I I S

त्यज तोटकमर्थनियोगकरं
प्रमदाधिकृतं व्यसनोपहतम्।

उपधाभिरशुद्धमतिं सचिवं
नरनायक ! भीरुकमायुधिकम् ॥

—छन्दोवृत्ति

श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण निम्नांकित है—

सतृतीयकषष्ठमनङ्गरते ! नवमं विरतिप्रभवं गुरु चेत् ।
घनपीनपयोधरभारनते ! ननु तोटकवृत्तमिदं कथितम् ॥

महाकवि क्षेमेन्द्र इस छन्द के विषय में लिखते हैं कि—

द्रुततालल्यैरेव, व्यक्तं रूक्षाक्षरैः पदैः ।
प्रनर्तयति यच्चित्तं, तत्तोटकमभीप्सितम् ॥

अर्थात् तोटक छन्द में ताल के लय शीघ्रता से युक्त होने चाहिये यानी लय **बहुत जल्दी** चलता रहे और उसमें रुक्ष अक्षर अर्थात् परुष वर्ण हों। ऐसा **तोटक** चित्त को नचाता है, आनन्दित कर देता है।

ऐसे एक तोटक का उदाहरण—

मदघूर्णितिलोचनषट्चरणं, घनरागमनङ्गकराभरणम् ।
कमलद्युति मुग्धवधूवदनं सुकृती पिबतीह सुधासदनम् ॥

द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ ॥ ४९ ॥

नगण-भगण-भगण-रगणैः द्रुतविलम्बितं नाम वृत्तं भवति । पादे यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में नगण, दो भगण और अन्त में रगण हों, उसे **द्रुतविलम्बित** नामक छन्द कहते हैं। इसके पाद के अन्त में विराम होता है।

उदाहरण—

न. भ. भ. र.

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ
तरणिजापुलिने नववल्लवी-
परिषदा सह केलिकुतूहलात् ।
द्रुतविलम्बितचारुविहारिणं
हरिमहं हृदयेन सदा वहे ॥

—छन्दोमञ्जरी

श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया है।

अयि ! कृशोदरि ! यत्र चतुर्थकं, गुरु च सप्तमकं दशमं तथा।
विरतिगं च तथैव विचक्षणैः, द्रुतविलम्बितमित्युपदिश्यते ॥

महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश के नवें सर्ग में द्रुतविलम्बित छन्द का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया है। जहाँ कविगण अपने पद्यों में यमकालंकार की छटा दिखलाना चाहते हैं वहाँ पर इसी छन्द का बहुधा प्रयोग करते हैं क्योंकि इस छन्द में यमकालंकार बड़ी सुगम रीति से बैठाया जा सकता है। कालिदास ने नवें सर्ग इसी छन्द में यमकालंकार का प्रयोग किया है। उदाहरण—

न मृगया न रतिर्न दुरोदरं, न च शशिप्रतिमाभरणं मधु।
तमुददाय न वा नवयौवना, प्रियतमा यतमानमपाहरत् ॥

यहाँ पर प्रियतमा और यतमा में यमक कितना सुन्दर लगता है। बस एक और उदाहरण ही पर्याप्त होगा।

श्रुतिसुख भ्रमरस्वनगीतयः, कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः, किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः ॥ ९-३५

चूँकि इस छन्द का नाम द्रुतविलम्बित है अतः इसका विन्यास पहिले तो द्रुत अर्थात् शीघ्र होना चाहिये और बाद में विलम्बित अर्थात् देर करके होना चाहिये। तभी यह छन्द सुन्दर प्रतीत होता है। परन्तु जहाँ पर इसके विपरीत रचना की जायेगी वहाँ इसकी सुन्दरता जाती रहती है। क्षेमेन्द्र ने भी इसी मत का समर्थन अपने सुवृत्ततिलक नामक ग्रन्थ में किया है। वे लिखते हैं कि—

प्रारम्भे द्रुतविन्यासं, पर्यन्तेषु विलम्बितम्।
विच्छित्या सर्वपादानां, भाति द्रुतविलम्बितम् ॥

उदाहरण (यथा क्षेमेन्द्र का)—

कमलपल्लववारिकणोपमं, किमिव पासि सदा निधनं धनम्।
कलभकर्णचलाञ्चलचञ्चलं, स्थिततराणि यशांसि न जीवितम् ॥

यद्यपि क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ में इस विषय का वर्णन नहीं किया है कि द्रुतविलम्बित छन्द में किस विषय का वर्णन अधिक उपयुक्त होता है परन्तु संस्कृत कवियों की परंपरा को देखते हुए यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि षड्ऋतु का वर्णन इसी छन्द में अधिक समीचीन होता है। कालिदास, भारवि तथा माघ आदि कवियों ने षड्ऋतु वर्णन में इसी छन्द को अपनाया है।

हिन्दी में द्रुतविलम्बित छन्द का एक हास्यजनक उदाहरण इतना सुन्दर है कि उसके यहाँ देने का लोभ हम संवरण नहीं कर सकते। वह इस प्रकार है।

मचलते चलते चलते गये ॥

मुनिशरविरतिर्नौ म्यौ पुटोऽयम् ॥ ५० ॥

नगण-नगण-मगण-यगणैः पुटं नाम वृत्तं भवति। मुनिभिः सप्तभिः शरैः पञ्चभिश्च विरतिः।

भावार्थ—जहाँ पर दो नगण, मगण और अन्त में एक यगण हो उसे पुट नामक छन्द कहते हैं। सात और पाँच अक्षरों के बाद इसमें विराम होता है।

उदाहरण—

न. न. म. य.

। । । । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ

न विचलति कथंचिन्न्यायमार्गा-
द्वसुनि शिथिलमुष्टिः पार्थिवो यः।
अमृतपुट इवासौ पुण्यकर्मा,
भवति जगति सेव्यः सर्वलोकैः ॥

—छन्दोवृत्ति

प्रमुदितवदना भवेन्नौ च रौ ॥ ५१ ॥

यदा नगण-नगण-रगण-रगणैः युक्तं भवति तदा प्रमुदितवदना नाम वृत्तं भवति।

भावार्थ—जिस छन्द में दो नगण और दो रगण होते हैं उसे प्रमुदितवदना कहते हैं।

उदाहरण—

न. न. र. र.

। । । । । । ऽ । ऽ ऽ । ऽ

अतिसुरभिरभाजिपुष्पश्रिया-
मतनुतरतयेव सन्तानकः।

तरुणपरभृतः स्वनं रागिणा-
मतनुत रतयेवसन्तानकः ॥

—माघ

नोट—इस छन्द के पाद में यति होती है। यथा पहिले चरण में श्रिया के या पर विराम है तथा दूसरी पंक्ति में सन्तानकः के कः पर यति है। इसी प्रकार से तीसरे और चौथे चरण को भी समझना चाहिये।

नयसहितौ न्यौ कुसुमविचित्रा ॥ ५२ ॥

नगण-यगण-नगण-यगणैः सहितं कुसुमविचित्रा नाम वृत्तं भवति। पादे यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में पहिले नगण और यगण हो और बाद में भी यही क्रम हो तो उसे **कुसुमविचित्रा** कहते हैं। इसके पाद में यति होती है।

उदाहरण—

न य न य

। । । । S S । । । । S S

विगलतमाला कुसुमविचित्रा
सचरणलाक्षा वलयसुलक्षा।
विरचितवेशं सुरतविशेषं
कथयति शय्या कुसुमविचित्रा ॥

—छन्दोवृत्ति

रसैर्जसजसा जलोद्धतगतिः ॥ ५३ ॥

जगण-सगण-जगण-सगणैः युतं जलोद्धतगतिः नाम वृत्तं भवति। रसाश्च रसाश्चेत्येकशेषे षड्भिः षड्भिश्च यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में जगण, सगण तथा फिर जगण और सगण हों, उसे **जलोद्धतगति** वृत्त कहते हैं। इसमें छः छः अक्षरों के बाद विराम होता है।

उदाहरण—

ज स ज स

। S । । । S । S । । । S

यदीयहलतो विलोक्य विपदं
कलिन्दतनया जलोद्धतगतिः।

विलासविपिनं विवेश सहसा
करोतु कुशलं हली स जगताम् ॥

—छन्दोमञ्जरी

चतुर्जगणं वद मौक्तिकदाम ॥ ५४ ॥

चतुर्भिः जगणैः युक्तं मौक्तिकदाम नाम वृत्त भवति । पादे यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में चार जगण हों उसे **मौक्तिकदाम** वृत्त कहते हैं । पाद में विराम होता है ।

उदाहरण—

ज. ज. ज. ज.

।ऽ। ।ऽ। ।ऽ। ।ऽ।

मया तव किञ्चिदकारि कदापि
विलासिनि ! वाक्यमनुस्मरताऽपि ।
तथाऽपि मनस्तव नाश्वसनाय-
व्रजामि कुतो भवतीमपहाय ॥

—वाणीभूषण

भुजङ्गप्रयातं भवेद्यैश्चतुर्भिः ॥ ५५ ॥

चतुर्भिः यगणैः सहितं भुजङ्गप्रयातं नाम वृत्तं भवति । पादे यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में चार यगण हों उसे **भुजङ्गप्रयात** नामक वृत्त कहते हैं । पाद में यति होती है ।

उदाहरण—

य य य य

।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ

सदारात्मजज्ञातिभृत्यो विहाय
स्वमेतं ह्रदं जीवनं लिप्समानः ।
मयाक्लेशितः कालियेत्थं कुरु त्वं
भुजङ्ग प्रयातं द्रुतं सागराय ॥

—छन्दोमञ्जरी

श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण निम्नांकित है—

यदाद्यं चतुर्थं तथा सप्तमं स्यात्
तथैवाक्षरं ह्रस्वमेकादशाद्यम् ।
शरच्चन्द्रविद्वेषि वक्त्रारविन्दे !
तदुक्तं कवीन्द्रैः भुजङ्गप्रयातम् ॥

रैश्चतुर्भिर्युता स्रग्विणी सम्मता ॥ ५६ ॥

चतुर्भिः रगणैः युक्ता स्रग्विणी भवति ।

भावार्थ—जिस छन्द में चार रगण हों, उसे **स्रग्विणी** कहते हैं । इसके पाद में यति होती है ।

उदाहरण—

र र र र
S I S S I S S I S S I S
इन्द्रनीलोपलेनेव या निर्मिता
शातकुम्भद्रवाऽलंकृता शोभते ।
नव्यमेघच्छविः पीतवासा हरेः,
मूर्तिरास्तां जयायोरसि स्रग्विणी ॥

—छन्दोमञ्जरी

भुवि भवेन्नभजरैः प्रियंवदा ॥ ५७ ॥

नगण-भगण-जगण-रगणैः युतं प्रियम्वदा नाम वृत्तं भवति । पादे यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में नगण, भगण, जगण और अन्त में रगण हों, उसे **प्रियम्वदा** नामक वृत्त कहते हैं । इसके पाद में यति होती है ।

उदाहरण—

न. भ. ज. र.
I I I S I I I S I S I S
हसिततामरसनेत्रसारसा,
रजनिवल्लभमुखालिकुन्तला ।
स्मितवती पतिहितैकमानसा,
सुकृतिनो हि दयिता प्रियम्वदा ॥

त्यौ त्यौ मणिमाला च्छिन्ना गुहवक्त्रैः ॥ ५८ ॥

तगण-यगण-तगण-यगणैः सहितं मणिमाला नाम वृत्तं भवति। गुह स्कन्दस्य षडाननस्य वक्त्रैः षड्भिः षड्भिश्च च्छिन्ना यतिमतीत्यर्थः।

भावार्थ—जिस छन्द में पहले तगण और यगण हों तथा पुनः यही क्रम हो, उसे **मणिमाला** कहते हैं। स्कन्द के मुख अर्थात् छः-छः अक्षरों के बाद यति होती है।

उदाहरण—

त य त य

ऽ ऽ । । ऽ ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ

प्रह्वामरमौलौ रत्नोपलक्लृप्ते
जातप्रतिबिम्बा शोणा मणिमाला।
गोविन्दपदाब्जे राजी नखराणा-
मास्तां मम चित्ते ध्वान्तं शमयन्ती॥

—छन्दोमञ्जरी

यहाँ पर मौलौ में लौ के बाद तथा क्लृप्ते में प्ते के बाद विराम है। ये दोनों छठें अक्षर हैं।

धीरैरभाणि ललिता तभौ जरौ ॥ ५९ ॥

तगण-भगण-जगण-रगणैः युतं ललिता नाम वृत्तं धीरैः पण्डितैः कथितमस्ति। पादे यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में तगण, भगण, जगण और अन्त में रगण हो, उसे **ललिता** नामक वृत्त पण्डित लोग कहते हैं। इसके बाद में यति होती है।

उदाहरण—

त. भ. ज. र.

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ । ऽ

सास्ते पुरत्रयमतीत्य सुन्दरी
गीता ततस्त्रिपुर सुन्दरी इति।
लोकानतीत्य ललिते यतो हि सा
भक्तैरभाणि ललिताऽभिधानतः॥

प्रमिताक्षरा सजससैरुदिता ॥ ६० ॥

सगण-जगण-सगण-सगणैः युक्तं प्रमिताक्षरा नाम वृत्तं भवति । पादे यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में सगण, जगण और अन्त में फिर दो सगण हों तो उसे प्रमिताक्षरा नामक वृत्त कहते हैं । इसके पाद के अन्त में विराम होता है ।

उदाहरण—

स. ज. स. स.

। । ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ

परिशुद्धवाक्यरचनाऽतिशयं
परिषिञ्चती श्रवणयोरमृतम् ।
प्रमिताऽक्षराऽपि विपुलार्थवती,
कविभारती हरति मे हृदयम् ॥

—छन्दोवृत्ति

ननभरसहिता महितोज्ज्वला ॥ ६१ ॥

नगण-नगण-भगण-रगणैः युक्ता उज्ज्वला भवति । महिता पूजिता श्रेष्ठेत्यर्थः । पादे यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में दो नगण, एक भगण और एक रगण हों, उसे उज्ज्वला नामक वृत्त कहते हैं । इसके पाद के अन्त में यति या विराम होता है ।

उदाहरण—

न. न. भ. र.

। । । । । । ऽ । । ऽ । ऽ

अधिहृदयमनाहतसारसे
तव पदमनुचिन्तयते हि यः ।
भगवति ननु तस्य यशोध्वजः,
स्फुरति च धिषणा स्फटिकोज्ज्वला ॥

पञ्चाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ ॥ ६२ ॥

मगण-मगण-यगण-यगणैः युतं वैश्वदेवी नाम वृत्तं भवति । पञ्चभिरश्वैः सप्तभिश्च छिन्ना यतिमती वैश्वदेवी नाम ।

भावार्थ—जिस छन्द में दो मगण और दो यगण हों, उसे **वैश्वदेवी** नामक वृत्त कहते हैं। इसमें पाँच और सात अक्षरों के बाद विराम होता है।

उदाहरण—

म. म. य. य.

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

अर्च्चामन्येषां त्वं विहायामराणां
अद्वैतेनैकं विष्णुमभ्यर्च्च भक्त्या।
तत्राऽशेषात्मन्यर्चिते भाविनी ते
भ्रातः ! सम्पन्नाऽऽराधना वैश्वदेवी॥

—छन्दोमञ्जरी

अब्ध्यष्टाभिर्जलधरमाला म्भौ स्मौ॥ ६३॥

मगण-भगण-सगण-मगणैः युतं जलधरमाला नाम वृत्तं भवति। अब्धिभिः चतुर्भिः अष्टाभिश्च यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में मगण, भगण, सगण और अन्त में पुनः एक मगण हों, उसे **जलधरमाला** नामक वृत्त कहते हैं। इसमें चार और आठ अक्षरों के विराम होता है।

उदाहरण—

म. भ. स. म.

ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । ऽ ऽ ऽ ऽ

या भक्तानां कलिदुरितोत्तप्तानां
तापच्छेदे जलधरमाला नव्या।
भव्याकारा दिनकरपुत्रीकूले
केलीलोला हरितनुरव्यात् सा वः॥

—छन्दोमञ्जरी

इह नवमालिका नजभयैः स्यात्॥ ६४॥

इह छन्दःशास्त्रे नगण-जगण-भगण-यगणैः युतं नवमालिका नाम वृत्तं भवति। अष्टाभिः चतुर्भिश्च यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में नगण, जगण, भगण और अन्त में यगण हो, उसे **नवमालिका** वृत्त कहते हैं इसमें आठ और चार अक्षरों के बाद विराम होता है।

उदाहरण—

न. ज. भ. य.

। । । । S । S । । । S S

धवलयशोंशुकेन परिवीता

सकलजनानुरागघुसृणाक्ता।

दृढ़गुणबद्धकीर्तिकुसुमौघैः

तव नवमालिकेव नृपलक्ष्मीः ॥

—छन्दोवृत्ति

स्वरशरविरतिर्ननौ रौ प्रभा ॥ ६५ ॥

नगण नगण रगण रगणैः युतं प्रभा नाम वृत्तं भवति। स्वरैः षड्जादिभिः सप्तभिः, शरैः पञ्चभिश्च यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में दो नगण और दो रगण हों, उसे **प्रभा** नामक वृत्त कहते हैं। इसमें सात और पाँच अक्षरों पर विराम होता है।

नोट—प्रभा तथा प्रमुदितवदना दोनों वास्तव में एक ही के दो नाम हैं क्योंकि दोनों के लक्षण समान हैं। चूँकि प्रमुदितवदना (लक्षणसूत्र सं० ५१) छन्द का उदाहरण पहिले दिया जा चुका है अतः यहाँ पर 'प्रभा' के उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। इस संबंध में पाठकों को 'प्रमुदित-वदना' का उदाहरण देखना चाहिये।

भवति नजावथ मालती जरौ ॥ ६६ ॥

नगण-जगण-जगण-रगणैः मालती नाम वृत्तं भवति। सप्तभिः पञ्चभिश्च यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में नगण, जगण, जगण और अन्त में रगण हों, उसे **मालती** नामक वृत्त कहते हैं। इसमें सात और पाँच अक्षरों के बाद विराम होता है।

उदाहरण—

न. ज. ज. र.

। । । । S । । S । S । S

इह कलयाऽच्युतकेलिकानन-

मधुरससौरभसारलोलुपः।

कुसुमकृतस्मितचारुविभ्रमा-
मलिरपि चुम्बति मालतीं मुहुः ॥

—छन्दोमञ्जरी

जभौ जरौ वदति पञ्चचामरम् ॥ ६७ ॥

जगण-भगण-जगण-रगणैः युतं पञ्चचामरं नाम वृत्तं भवति । पादे यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में जगण, भगण, जगण और अन्त में रगण होता है उसे **पञ्चचामर** नामक वृत्त कहते हैं । इसके पादान्त में यति होती है ।

नोट—यह छन्द दूसरी पुस्तकों में नहीं मिलता है । अतः वृत्त रत्नाकर के टीकाकारों ने इसका उदाहरण भी नहीं दिया है ।

अभिनवतामरसं नजजाद्यः ॥ ६८ ॥

नगण-जगण-जगण-यगणैः सहितं अभिनवतामरसं नाम वृत्तं भवति । पादे यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में नगण, दो जगण और अन्त में एक यगण होता है उसे **अभिनवतामरस** नामक वृत्त कहते हैं । इसके पाद में यति होती है ।

उदाहरण—

न. ज. ज. य.

। । । । S । । S । । S ।

अभिनवतामरसं कमलायाः
करयुगवासमितं मृदुलायाः ।
अहिपतितल्पगतं स्मरतातं,
मदयति कामकलाकलनार्थम् ॥

नोट—इस छन्द के साथ उन वृत्तों का वर्णन यहाँ समाप्त होता है जिनमें १२ अक्षर प्रत्येक चरण में होते थे । अब उन छन्दों का वर्णन प्रस्तुत किया जायेगा, जिनके प्रत्येक पाद १३ अक्षर होते हैं । इस जाति के छन्दों में प्रहर्षिणी सर्वप्रधान है । इन छन्दों को अतिजगती जाति (टाइप) कहते हैं ।

अथ [१३] अतिजगती

तुरगरसयतिर्नौ ततौ गः क्षमा ॥ ६९ ॥

नगण-नगण-तगण-तगण-गुरुभिश्च क्षमा नाम वृत्तं भवति । तुरगैः सप्तभिः, रसैः षड्भिश्च यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में दो नगण और दो तगण तथा अन्त में एक गुरु हों, उसे **क्षमा** नामक वृत्त कहते हैं। इसमें सात और छः अक्षरों के बाद विराम होता है।

उदाहरण—

न. न. त. त. गु.

। । । । । । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ

अनिशमधिमनश्शिरत्कलाचिन्तने
स्वमपि परशिवं भावयन्मज्जति।
स रचयितुमलं भावनामात्रतो
जगदिदमखिलं तत्पुरः का क्षमा॥

म्नौ ज्रौ गः त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्॥ ७०॥

मगण-नगण-जगण-रगण-गुरुभिश्च प्रहर्षिणी नाम वृत्तं भवति। त्रिभिर्दशभिश्च यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में मगण, नगण, जगण और अन्त में रगण होता है उसे **प्रहर्षिणी** नामक वृत्त कहते हैं। तीन और दश अक्षरों के बाद इसमें यति या विराम होता है।

उदाहरण—

म. न. ज. र. गु.

ऽ ऽ ऽ । । । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ

उत्तुङ्गस्तनकलशद्वयोन्नताङ्गी
लोलाक्षी विपुलनितम्बशालिनी च।
बिम्बोष्ठी नववरमुष्टिमेयमध्या,
सा नारी भवति मनःप्रहर्षिणीति॥

—छन्दोवृत्ति

इस छन्द का लक्षण श्रुतबोध में इस प्रकार दिया हुआ है।

आद्यं चेत्त्रितयमथाष्टमं नवान्त्यं, द्वावन्त्यौ गुरुविरतौ सुभाषिते स्यात्।
विश्रामो भवति महेशनेत्रदिग्भिः, विज्ञेया ननु सुदति! प्रहर्षिणी सा॥

इस छन्द का एक बहुत ही सुन्दर उदाहरण कालिदास के रघुवंश में मिलता है, जो निम्नांकित है—

निर्दिष्टां कुलपतिना च पर्णशालामध्यास्य प्रयतपरिग्रहद्वितीयः ।
तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानां, संविष्टः कुशशयने निशां निनाय ॥

महाकवि क्षेमेन्द्र ने प्रहर्षिणी के गुण का वर्णन करते हुए लिखा है कि इस छन्द के प्रत्येक पाद में तीन अक्षरों के बाद आकार का विधान होना चाहिये। शेष अक्षर द्रुततर—शीघ्रगामी अर्थात् ह्रस्व होने चाहिये। ऐसी ही प्रहर्षिणी हर्ष अर्थात् आनन्द को देने वाली होती है। क्षेमेन्द्र का कथन निम्नांकित है—

आकारमन्थरैः प्रायः पादे पादेऽक्षरैस्त्रिभिः ।
शेषाक्षरैर्द्रुततरैः प्रहर्षाय प्रहर्षिणी ॥ २।१९

प्रहर्षिणी का उपर्युक्त उदाहरण यथा श्रीहर्षदेव का :—

दुर्वारां कुसुमशरव्यथां वहन्त्या,
कामिन्या यदभिहितं पुरः सखीनाम् ।
तद्भूयः शिशुशुकसारिकाभिरुक्तं,
धन्यानां श्रवणपथातिथित्वमेति ॥

इसके ठीक विपरीत उदाहरण यथा क्षेमेन्द्र का :—

संकोचव्यतिकरबद्धभीतिलोलैः,
निर्यद्भिः भ्रमरभरैः सरोरुहेभ्यः ।
आरब्धः क्षणमिव सन्ध्यया जगत्या-
मुत्पत्त्यै घनतिमिरस्य बीजवापः ॥

चतुर्ग्रहैरतिरुचिरा जभस्जगाः ॥ ७१ ॥

जगण-भगण-सगण-जगण-गैश्चतुर्षु नवसु च यतावतिरुचिरा नाम वृत्तं भवति ।

भावार्थ—जिस छन्द में जगण, भगण, सगण और अन्त में पुनः एक जगण हो तथा उसके बाद एक गुरु हो उसे **अतिरुचिरा** वृत्त कहते हैं। इसमें चार और ग्रह अर्थात् नव अक्षरों के बाद यति या विराम होता है।

उदाहरण— ज. भ. स. ज. गु.

। ऽ । ऽ । । । । ऽ । ऽ । ऽ

अभून्नृपो विबुधसखः परन्तपः
श्रुतान्वयो दशरथ इत्युदाहृतः ।

गुणैर्वरं भुवनहितच्छलेन यं
सनातनः पितरमुपागमत् स्वयम् ॥

—भट्टिकाव्य

वेदै रन्ध्रैर्म्तौ यसगा मत्तमयूरम् ॥ ७२ ॥

मगण-तगण-यगण-सगणैः गुरुणा च युतं मत्तमयूरं नाम वृत्तं भवति। वेदाश्चत्वारो रन्ध्राणि नव तेषु यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में मगण, तगण, यगण, सगण तथा अन्त में एक गुरु हो, उसे **मत्तमयूर** नामक वृत्त कहते हैं। इसमें वेद—चार और रन्ध्र—नव अक्षरों के बाद विराम होता है।

उदाहरण—

म. त. य. स. गु.

S S S S S I I S S I I S S

व्यूढोरस्कः सिंहसमानानतमध्यः
पीनस्कन्धः मांसलहस्तायतबाहुः।
कम्बुग्रीवः स्निग्धशरीरस्तनुलोमा,
भुङ्क्ते राज्यं मत्तमयूराऽऽकृतिनेत्रः॥

—छन्दोवृत्ति

उपस्थितमिदं ज्सौ त्सौ सगुरुकं चेत् ॥ ७३ ॥

जगण-सगण-तगण-सगणैः गुरुणा च युतं उपस्थितं नाम वृत्तं भवति। पञ्चभिरष्टभिश्चात्र यतिः।

भावार्थ—जिस जन्द में जगण, सगण, तगण, सगण और अन्त में एक गुरु हो, उसे **उपस्थित** नामक छन्द कहते हैं। इसमें पाँच और आठ अक्षरों के बाद विराम होता है।

नोट—इस छन्द का उदाहरण उपलब्ध नहीं हो सका, अतः यहाँ नहीं दिया जा सकता।

सजसा जगौ भवति मञ्जुभाषिणी ॥ ७४ ॥

सगण-जगण-सगण-जगणैः गुरुणा च मञ्जुभाषिणी नाम वृत्तं भवति। पञ्चभिरष्टभिश्चात्र यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में सगण, जगण, सगण, जगण हों और अन्त में एक गुरु हो तो उसे **मञ्जुभाषिणी** नामक वृत्त कहते हैं। इसमें पाँच और आठ अक्षरों के बाद विराम होता है।

उदाहरण—

स. ज. स. ज. गु.

। । ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ । ऽ

अमृतोर्मिशीतलकरेण लालयन्
तनुकान्तिरोचितविलोचनो हरे।
नियतं कलानिधिरसीति बल्लवी
मुदमच्युते व्यधित मञ्जुभाषिणी॥

—छन्दोमञ्जरी

इस छन्द की दूसरा सुन्दर उदाहरण (भवभूति के उत्तररामचरित से)—

समयः स वर्तत इवैष यत्र मां,
समनन्दयत् सुमुखि गौतमार्पितः।
अयमाग्रहीतकमनीयकङ्कणः,
तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः॥

ननततगुरुभिश्चन्द्रिकाश्वर्तुभिः॥ ७५॥

नगण-नगण-तगण-तगण-गुरुभिश्च चन्द्रिका नाम वृत्तं भवति। अश्वाः सप्त, ऋतवः षट्, एतेषु यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में दो नगण, दो तगण और अन्त में गुरु हो उसे **चन्द्रिका** छन्द कहते हैं। इसमें सात और छः अक्षरों के बाद विराम होता है।

उदाहरण—

न. न. त. त. गु.

। । । । । । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ

शरदमृतरुचश्चन्द्रिकाक्षालिते
दिनकरतनयातीरदेशे हरिः।
विहरति रभसाद्बल्लवीभिः समं
त्रिदिव युवतिभिः कोऽपि देवो यथा॥

नोट—चन्द्रिका छन्द के लक्षण के साथ ही अतिजगती जाति के छन्दों की समाप्ति हो जाती है। अब इसके बाद शक्वरी नामक जाति (Type) प्रारम्भ होती है। इसमें आने वाले छन्दों के प्रत्येक पाद की अक्षर संख्या १४ होती है। इस जाति में बसन्ततिलका सबसे प्रसिद्ध छन्द है।

अथ [१४] शक्वरी

म्तौ न्सौ गावक्षग्रहविरतिरसम्बाधा ॥ ७६ ॥

मगण-तगण-नगण-सगणैः गुरुभ्यां च असम्बाधा नाम वृत्तं भवति। अक्षैः बाह्येन्द्रियैः पञ्चभिः, ग्रहैः नवभिश्च यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में मगण, तगण, नगण, सगण और अन्त में दो गुरु हों, उसे **असम्बाधा** नामक वृत्त कहते हैं। अक्ष-पाँच और ग्रह-नव अक्षरों पर इसमें विराम होता है।

उदाहरण—

म. त. न. स. गु. गु.
S S S S S I I I I I I S S S

भङ्क्त्वा दुर्गाणि द्रुमवनमखिलं छित्वा
हत्वा तत्सैन्यं करितुरगबलं हत्वा।
येनाऽसम्बाधा स्थितिरजनि विपक्षाणां
सर्वोर्वीनाथः स जयति नृपतिर्मुञ्जः॥

—छन्दोवृत्ति

ननरसलघुगैः स्वैरपराजिता ॥ ७७ ॥

नगण-नगण-रगण-सगणैः लघुगुरुभ्याञ्च अपराजिता नाम वृत्तं भवति। स्वराश्च स्वराश्चेत्येकशेषे सप्तभिः सप्तभिश्च यतिर्भवति।

भावार्थ—जिस छन्द में दो नगण, रगण, सगण और अन्त में लघु, गुरु हों, उसे **अपराजिता** कहते हैं। सात, सात के बाद विराम होता है।

उदाहरण—

न. न. र. स. ल. घु.
I I I I I I S I S I I I I S

फणिपतिवलयं जटामुकुटोज्ज्वलं
मनसिजमथनं त्रिशूल विभूषितम्।

स्मरसि यदि सखे ! शिवं शशिशेखरं
भवति तव तनुः परैरपराजिता ॥

ननभनलघुगैः प्रहरणकलिता ॥ ७८ ॥

नगण-नगण-भगण-नगणैः लघुगुरुभ्यां प्रहरणकलिता नाम वृत्तं भवति। सप्तभिः सप्तभिश्च यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में नगण, नगण, भगण, नगण और अन्त में एक लघु और गुरु हों उसे **प्रहरणकलिता** नामक वृत्त कहते हैं। इसमें पहिले छन्द की तरह सात, सात अक्षरों पर विराम होता है।

उदाहरण—

न. न. भ. न. ल. गु.

। । । । । । ऽ । । । । । । ऽ

सुरमुनिमनुजरुपचितचरणां
रिपुभयचकितत्रिभुवनशरणाम्।
प्रणमत महिषासुरवधकुपितां
प्रहरणकलितां पशुपतिदयिताम् ॥

—छन्दोवृत्ति

उक्ता वसन्ततिलका तभजाजगौ गः ॥ ७९ ॥

तगण भगण जगण जगणैः गुरुभ्यां च वसन्ततिलका नाम वृत्तं भवति। अष्टाभिः षड्भिश्च यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में तगण, भगण, दो जगण तथा अन्त में दो गुरु हों उसे वसन्ततिलका नामक वृत्त कहते हैं। इसमें आठ और छः अक्षरों के बाद विराम या यति होती है।

उदाहरण—

त. भ. ज. ज. गु. गु.

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

उद्धर्षिणीजनदृशां स्तनभारगुर्वी
नीलोत्पलद्युतिमलिम्लुच लोचना च।

सिंहोन्नतत्रिककटी कुटिलालकान्ता,
कान्ता वसन्ततिलका नृपवल्लभासौ ॥

—छन्दोवृत्ति

श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण निम्नांकित है—

आद्यं द्वितीयमपि चेद्गुरु तच्चतुर्थं,
यत्राष्टमं च दशमान्त्यमुपान्त्यमन्त्यम् ।
अष्टाभिरिन्दुवदने ! विरतिश्च षड्भिः,
कान्ते वसन्ततिलकां किल तां वदन्ति ॥

कालिदास ने रघुवश के पंचम सर्ग के अन्तिम १०-१५ श्लोकों में वसन्ततिलका छन्द का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया है। ये श्लोक अपनी सुन्दरता रमणीयता के लिये संस्कृत-साहित्य में प्रसिद्ध हैं। उदाहरण यथा—

रात्रिर्गतामतिमतांवर मुञ्च शय्यां,
धात्रा द्विधैव ननु धूर्जगतो विभक्ता ।
तामेकतस्तव विभर्ति गुरुर्विनिद्रः,
तस्या भवानपरधुर्यपदावलम्बी ॥ ५।६६

ये श्लोक रमणीय तथा मर्मस्पर्शी हैं कि इनका दूसरा उदाहरण देने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता।

तत्र स्वयंवरसमाहृतराजलोकं,
कन्याललामकमनीयमजस्य लिप्सोः ।
भावावबोधकलुषा दयितेव रात्रौ,
निद्राचिरेण नयनाभिमुखी बभूव ॥ ५।६४

क्षेमेन्द्र ने वसन्ततिलका की सुन्दरता तथा गुण का विवेचन करते हुए लिखा है कि वसन्ततिलका के प्रथम अक्षर में आकार होना चाहिये तथा इसमें ओज गुण होने से इसकी कान्ति विकास को प्राप्त होती है।

वसन्ततिलकास्याग्रे साकारे प्रथमाक्षरे ।
ओजसा जायते कान्तिः, सविकासविलासिनी ॥ २।४०

उदाहरण यथा 'विद्याधिपति' उपनामधारी रत्नाकर का—

कण्ठश्रियं कुवलयस्तबकाभिराम,
दामानुकारि निकटच्छविकालकूटाम् ।

विभ्रत्सुखानि दिशतादुपहारपीत,
धूपोत्थधूममलिनामिव धूर्जटिर्वः ॥

इस श्लोक के प्रत्येक पाद में आकार है तथा समस्त श्लोक में गाढ़ बन्ध और ओज गुण होने से यह सुन्दर प्रतीत होता है।

क्षेमेन्द्र आगे चलकर यह भी लिखते हैं कि प्रथम अक्षर को आकार सहित कर देने भी यदि शेष रचना अल्प —छोटे-छोटे पदों के प्रयोग से सुशोभित है तो उस दशा में वसन्ततिलका ग्रन्थि-समस्त पदावली से रहित होकर रमणीयता को प्राप्त होता है।

आकारेऽपि कृते पूर्वं बन्धेऽल्पपदपेशले।
वसन्ततिलकं धत्ते निर्ग्रन्थि रमणीयताम् ॥ २।२१

उदाहरण (यथा परिमल का)—

अच्छासु हंस इव बालमृणालिकासु,
भृङ्गो नवास्विव मधुद्रुममञ्जरीषु।
कोऽवन्तिभर्तुरपरो रसनिर्भरासु,
पृथ्वीपतिः सुकविसूक्तिषु बद्धभावः ॥

क्षेमेन्द्र का कथन है कि वसन्ततिलका छन्द वीर और रौद्र रसों के संकर अर्थात् मिश्रण के वर्णन में अधिक उपयुक्त होता है। यानी वीर और रौद्र रसों का जहाँ सम्मिलित वर्णन हो वहीं यह फबता है।

वसन्ततिलकं भाति संकरे वीररौद्रयोः।

वीर और रौद्र रसों का संकर यथा (रत्नाकर का)—

जृम्भाविकासितमुखं नखदर्पणान्त-
राविष्कृतप्रतिमुखं गुरुरोषगर्भम्।
रूपं पुनातु जनितारिचमूविमर्श-
मुद्धृत्तदैत्यबधनिर्वहणं हरेर्वः ॥

क्षेमेन्द्र ने लिखा है कि वसन्ततिलका-गाढ़बन्ध के साथ-रूपी वाग्वल्ली रत्नाकर कवि के मुख रूपी कानन में अधिक सुन्दर लगती है। अर्थात् संस्कृत कवियों में रत्नाकर वसन्ततिलका लिखने में सिद्ध हस्त समझे जाते हैं।

वसन्ततिलका रूढा वाग्वल्ली गाढसङ्गिनी।
रत्नाकरस्योत्कलिका चकास्त्याननकानने ॥ ३।३२

नोट—रत्नाकर की वसन्ततिलका का उदाहरण अभी ऊपर दिया जा चुका है। अतः पुनः यहाँ अनावश्यक है।

सिंहोन्नतेयमुदिता मुनिकाश्यपेन ॥ ८० ॥

काश्यपेन मुनिना इयं वसन्ततिलकैव सिंहोन्नतोक्तेति संज्ञान्तरोक्तिः।

भावार्थ—काश्यप मुनि ने वसन्ततिलका ही का दूसरा नाम **सिंहोन्नता** लिखा है या कहा है।

उद्धर्षिणीयमुदिता मुनिसैतवेन ॥ ८१ ॥

सैतवेन त्वाचार्येणेयमुद्धर्षिणीत्युक्ता।

भावार्थ—सैतव आचार्य ने इसी वसन्ततिलका का दूसरा नाम **उद्धर्षिणी** कहा है।

उदाहरण—

कस्तूरिकाहरिण ! मुञ्च वनोपकण्ठं
मा सौरभेण ककुभः सुरभीकुरुष्व।
आस्तां यशो ननु किरातशराभिपाता
त्त्राताऽपि हन्त भविता भवतो दुरापः ॥

—रुद्रकवि

इन्दुवदना भजसनैः सगुरुयुग्मैः ॥ ८२ ॥

भगण-जगण-सगण-नगणैः गुरुभ्यां च इन्दुवदना नाम वृत्तं भवति।

भावार्थ—जिस छन्द में भगण, जगण, सगण, नगण और अन्त में दो गुरु हों, उसे **इन्दुवदना** नामक वृत्त कहते हैं।

उदाहरण—

भ. ज. स. न. गु. गु.

S I I I S I I I S I I I S S

इन्दुवदना कमलकोमलशरीरा
मञ्जुवचना मदनमोहनविलासा।
कं न वशयेन्मुनिवरं नयनलीला
वीक्षणलवैरपि हठाच्चतुरवाचा ॥

द्विः सप्तच्छिदलोला म्सौ म्भौ गौ चरणे चेत् ॥ ८३ ॥

मगण-सगण-मगण-भगणैः गुरुभ्यां च अलोला नाम वृत्तं भवति। **द्विः** द्विवारं सप्तसु छित् छेदो यतिः विरामः भवति।

भावार्थ—जिस छन्द में मगण, सगण, मगण, भगण और अन्त में दो गुरु हों, उसे **अलोला** कहते हैं। सात-सात अक्षरों के बाद इसमें विराम होता है।

उदाहरण—

म. स. म. भ. गु. गु.

ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ

मुग्धे ! यौवनलक्ष्मीर्विद्युद्विभ्रमलोला
त्रैलोक्याद्भुतरूपो गोविन्दोऽतिदुरापः।
तद्वृन्दावनकुञ्जे गुञ्जद्भृङ्गसनाथे
श्रीनाथेन समेता स्वच्छन्दं कुरु केलिम् ॥

—छन्दोमञ्जरी

नोट—अब इस जाति के छन्द समाप्त होते हैं। इसके बाद अतिशक्वरी नामक जाति प्रारम्भ होती है। इसके प्रत्येक पाद में १५ अक्षर होते हैं। इस जाति में सबसे प्रसिद्ध छन्द मालिनी है जिसका संस्कृत के कवियों ने अपने काव्यों में प्रचुर प्रयोग किया है।

अथ [१५] अतिशक्वरी

द्विहतहयलघुरथ गिति शशिकला ॥ ८४ ॥

द्विगुणिताः हयाः सप्त लघवो यत्र सा तथा। अथ तदनन्तरं गुरुर्गुर्वन्ताश्चतुर्दश लघवः शशिकलेत्यर्थः। सप्तभिरष्टभिश्च यतिरिति सम्प्रदायः।

भावार्थ—जिस छन्द में प्रथम १४ अक्षर लघु तथा अन्तिम गुरु हों उसे **'शशिकला'** कहते हैं। इस छन्द में सात और आठ अक्षरों पर विराम होता है, ऐसा सम्प्रदाय चला आता है।

उदाहरण—

न. न. न. न. स.

। । । । । । । । । । । । । । ऽ

मलयजतिलकसमुदितशशिकला
व्रजयुवतिलसदलिकगगनगता।

सरसिजनयनहृदयसलिलनिधि,
व्यतनुत विततरभसपरितरलम् ॥

—छन्दोमञ्जरी

स्रगिति भवति रसनवकयतिरियम् ॥ ८५ ॥

इयं शशिकलैव रसेषु-षट्सु नवसु यतौ स्रगिति संज्ञिता मालेत्यर्थः ।

भावार्थ—इसी शशिकला को ही जब छः और नव अक्षरों पर विराम होता है तब **स्रग्** या **माला** कहते हैं ।

उदाहरण—

अयि ! सहचरि ! **रुचिरतरगुणमयी**
म्रदिमवसतिरनपगतपरिमला ।
स्रगिव निवसविलसदनुपमरसा,
सुमुखि ! मुदितदनुजदलनहृदये ॥

—छन्दोमञ्जरी

वसुहय-यतिरिह मणि-गुण-निकरः ॥ ८६ ॥

अष्टसु सप्तसु च यतावियमेव शशिकला मणिगुणनिकरसंज्ञितेति । यति-भेदेन संज्ञान्तरद्वयमुक्तम् ।

भावार्थ—जब इसी शशिकला छन्द में आठ और सात अक्षरों पर यति होती है तब उसी को **मणिगुणनिकर** नामक छन्द कहते हैं । यतिभेद से इसी छन्द के उपर्युक्त दो भेद हो जाते हैं ।

उदाहरण—

नरकरिपुरवतु निखिलसुरगति-
रमितमहिमभरसहजनिवसतिः ।
अनवधिमणिगुणनिकरपरिचितः
सरिदधिपतिरिव धृततनुविभवः ॥

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥ ८७ ॥

नगण-नगण-मगण-यगण-यगणैः सहिता मालिनी नाम वृत्तं भवति । भोगिभिः नागैरष्टभिः, लोकैर्भूरादिभिः सप्तभिर्यताविति शेषः ।

भावार्थ—जिस छन्द में दो नगण, एक मगण और अन्त में दो यगण हों, उसे **मालिनी** नामक छन्द कहते हैं । इसमें भोगि—साँप अर्थात् आठ और लोक अर्थात् सात अक्षरों पर विराम होता है ।

उदाहरण—

न. न. म. य. य.

। । । । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

ननननमयबाणीमेखलाकृष्टिकाल-
परिचलदिव शीलं नोत्सृजन्ती दुकूलम् ।
तृणलवचलनेऽपि स्वैरिणी शङ्कमाना
दिशि दिशि कृतदृष्टिर्मालिनी कस्य नेष्टा ।।

—क्षेमेन्द्र

श्रतबोध में इस छन्द का लक्षण निम्नांकित है—

प्रथममगुरुषट्कं विद्यते यत्र कान्ते !
तदनु च दशमं चेदक्षरं द्वादशान्त्यम् ।
करिभिरथ तुरङ्गैर्यत्र कान्ते ! विरामः
सुकविजनमनोज्ञा मालिनी सा प्रसिद्धा ।।

मालिनी छन्द संस्कृत साहित्य में अनुष्टुप् के बाद सबसे अधिक प्रचलित तथा सुन्दर और रमणीय छन्द है। संस्कृत साहित्य का शायद ही कोई प्रमुख ऐसा कवि होगा जिसने इस रमणीय छन्द को अपने काव्य में व्यवहृत न किया हो अथवा इसे अछूता छोड़ दिया हो। क्या कालिदास और क्या भारवि क्या भवभूति सबने इसे अपनी प्रतिभा का आश्रय प्रदान किया है तथा अपने काव्य में इसका प्रयोग कर इसे गौरव प्रदान किया है। मानों इस छन्द के प्रयोग के बिना कविगण अपना कविकर्म पूरा ही नहीं समझते थे। वास्तव में इस छन्द में वह अलौकिक मधुरिमा जो दूसरे छन्दों में उपलब्ध कहाँ ? संभवतः इसीलिये हमारे कवियों ने इस छन्द को इतना आदर प्रदान किया है। माघ ने तो अपने शिशुपालवध के ग्यारहवें सर्ग में प्रभात-वर्णन करते हुए समस्त सर्ग में केवल इसी ही एक छन्द का प्रयोग किया है। अब हम यहाँ कुछ थोड़े से उदाहरण देकर यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि संस्कृत के प्रायः सभी महाकवियों ने इस छन्द को किस सुन्दरता से अपने ग्रन्थ में स्थान दिया है।

उदाहरण यथा—कालिदास के शाकुन्तल से—

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः,
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव ।

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ॥

महाकवि भारवि का किरातार्जुनीय से—

व्रज जय रिपुलोकम्पादपद्मानतः सन्
गदित इति भवेन श्लाघितो देवसंघैः ।
निजगृहमथ गत्वा सादरम्पाण्डुपुत्रो
धृतगुरुजयलक्ष्मीर्धर्मसूनुर्ननाम ॥ १८।४८

महाकवि माघ के शिशुपालवध से—

अनुनयमगृहीत्वा व्याजसुप्ता पराची,
रुतमथचक्रवाकोस्तारमाकर्ण्य कल्ये ।
कथमपि परिवृत्ता निन्द्रयान्धा किलस्त्री
मुकुलितनयनैवाऽऽश्लिष्यति प्राणनाथम् ॥

महाकवि भवभूति के उत्तररामचरित से—

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुः
न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मानुद्गते चन्द्रकान्तः ॥ ६।१२ ॥

क्षेमेन्द्र ने मालिनी के गुण का विवेचन करते हुए इसपर बहुत गहरा साथ ही विस्तृत विचार किया है। आप लिखते हैं कि विसर्गहीन मालिनी उसी प्रकार से शोभा नहीं देती जैसे कि पूँछ कटी हुई चमरी तथा पत्तों से रहित लता।

विसर्गहीनपर्यन्ता मालिनी न विराजते ।
चमरी छिन्नपुच्छेव वल्लीवालूनपल्लवा ॥ २।२२

यथा भट्टवल्लट का यह श्लोक—

वरमिह रवितापैः किं न शीर्णासि गुल्मे !
किमु दवदहनैर्वा सर्वदाहं न दग्धा ।
यदहृदयजनौघैर्वृन्तपर्णानभिज्ञै-
रितरकुसुममध्ये ! मालति ! प्रोज्झितासि ॥

इसके विपरीत विसर्ग से युक्त कालिदास का यह श्लोक—

अथ स ललितयोषिद्भ्रूलताचारुशृङ्गं
रतिवलयपदाङ्के चापमासज्य कण्ठे।
सहचरमधुहस्तन्यस्तचूताङ्कुरास्त्रः
शतमखमुपतस्थे प्राञ्जलिः पुष्पकेतुः॥

फिर आगे क्षेमेन्द्र लिखते हैं कि यदि मालिनी के द्वितीयार्ध (अर्थात् तीसरे और चौथे पाद समस्त अर्थात् दीर्घसमास से युक्त हों तो वह श्रेष्ठ समझी जाती है। परन्तु यदि प्रथमार्ध अर्थात् पहिला और दूसरा पाद समस्त हों तो वह मालिनी अवरा अर्थात् निम्नकोटि की समझी जाती है।

द्वितीयार्धे समस्ताभ्यां, पादाभ्यां मालिनी वरा।
प्रथमार्धे समस्ताभ्यां, पादाभ्यामवरा मता॥ २।२३

द्वितीयार्धसमस्तपादा यथा गन्दिनक का—

करतरलितबन्धं कञ्चुकं कुर्वतीनां
प्रतिफलितमिदानीं दैपमाताम्रमर्चिः।
स्तनतटपरिणाहे भामिनीनां भविष्य-
न्नखपदलिपिलीला सूत्रपातं करोति॥

प्रथमार्धसमस्तपादा यथा राजशेखर का—

इह हि नव वसन्ते मञ्जरीपुष्परेणु-
च्छुरणधवलदेहा बद्धहेलं सरन्ति।
तरलमलिसमूहाः हारिहुङ्कारकण्ठा
बहुलपरिमलालीसुन्दरं सिन्दुवारम्॥

क्षेमेन्द्र मालिनी की मनोरमता के विषय में लिखते हैं कि जिस प्रकार मूर्ख मनुष्य भी बीणा के बुरे स्वर को पहिचान कर उद्वेग को प्राप्त हो जाता है, अर्थात् बेचैन हो जाता है उसी प्रकार से मूर्ख मनुष्य भी मालिनी छन्द को कानों से सुनकर के उसकी विस्वरता को पहिचान कर बेचैन हो जाता है परन्तु बाणी से उसे इसलिये प्रकट नहीं कर सकता, क्योंकि वह अज्ञानी है, अक्षरज्ञान से रहित है।

अज्ञोऽप्यलक्ष्यं मालिन्यां वीणायामिव विस्वरम्।
श्रुत्वैवोद्वेगमायाति वाचा वक्तुं न वेत्ति तम्॥ २।२४

यथा भट्टेन्दुराज का यह रमणीय श्लोक—

रहसि हृतदुकूला शीलिता तैलदीपे,
त्वदुपगतसमृद्धेः **प्रेयसी** श्रोत्रियस्य ।
विकिरति पटवासैर्हन्ति कर्णावतंसैः,
शमयति मणिदीपं पाणिफूत्कानिलेन ॥

क्षेमेन्द्र ने इस छन्द के विधान के विषय में यह लिखा है कि मालिनी छन्द का प्रयोग सर्ग के अन्त में करना चाहिये। जिस प्रकार संगीत अन्त में द्रुत-शीघ्र ताल-लय का प्रयोग किया जाता है।

कुर्यात्सर्गस्य पर्यन्ते मालिनीं द्रुततालवत् ॥ ३।१९

सर्गान्त में यथा कालिदास का यह श्लोक—

अवचितबलिपुष्पा वेदिसम्मार्गदक्षा,
नियमविधिजलानां बर्हिषां चोपनेत्री ।
गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी,
नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादैः ॥ कु. सु.

भिन्न-भिन्न छन्दों को लिखने में निपुण कवियों का वर्णन करते हुए क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्ततिलक में इस विषय का कहीं उल्लेख नहीं किया है कि मालिनी लिखने में कौन कवि सिद्धहस्त है। यदि उन्होंने यह लिखने की कृपा की होती तो यह बड़े सौभाग्य का विषय होता। हमारी विनम्र सम्मति में माघ के समान मालिनी छन्द को निपुणता से प्रयोग करने वाला कवि दूसरा कोई नहीं। यद्यपि अनेक कवियों ने इस छन्द का प्रयोग किया है परन्तु माघ की समानता कोई भी नहीं कर सका है। जिनको मेरे इस कथन में विश्वास न हो वे शिशुपालवध के ११ वें सर्ग को ध्यानपूर्वक पढ़ें। तब उन्हें मालूम हो जायेगा कि माघ मालिनी लिखने में कितने निपुण कवि वे। अब हम माघ की मालिनी का एक और उदाहरण देकर इस प्रसंग को यहीं समाप्त करना चाहते हैं।

चिररतिपरिखेदप्राप्तनिद्रासुखानां,
चरममपि शयित्वा पूर्वमेव प्रबुद्धाः ।
अपरिचलितगात्राः कुर्वते न प्रियाणां,
अशिथिलभुजचक्राश्लेषभेदं तरुण्यः ॥

शिशुपालवध–सर्ग ११

भवति नजौ भजौ रसहितौ प्रभद्रकम् ॥ ८८ ॥

नगण-जगण-भगण-जगण-रगणैः सहितं प्रभद्रकं नाम वृत्तं भवति । सप्तस्वष्टसु च यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में नगण, जगण, भगण, जगण और रगण होते हैं उसे **प्रभद्रक** नामक वृत्त कहते हैं। सात और आठ अक्षरों के बाद इसमें विराम होता है।

उदाहरण—

न. ज. भ. ज. र.

। । । । S । S । । । S । S । S

भज भज शंकरं गिरिजया समन्वितं
त्यजभवबन्धनं, विरसताऽवसानकम् ।
उपनिषदां मतं मनसि धेहि सन्ततं
गुरुकृपया सदा भवतु ते प्रभद्रकम् ॥

सजना नयौ शरदशयतिरियमेला ॥ ८९ ॥

सगण-जगण-नगण-नगण-यगणैः एला नाम वृत्तं भवति। शरेषु पञ्चसु दशसु च यतिः भवति ।

भावार्थ—जिस छन्द में सगण, जगण, दो नगण और अन्त में यगण होता है उसे **एला** नामक वृत्त कहते हैं। शर पाँच और दश अक्षरों के बाद इसमें विराम होता है।

उदाहरण—

स. ज. न. न. य.

। । S । S । । । । । । । । । S S

यदि कोपिनी प्रभवसि मदुपरि कान्ते !
दृढ़बन्धनं घटय भुजलतिकया मे ।
सहसा कुरु प्रखरनयनशरघातं
रदनच्छदावथ दश सुमुखि ! यथेच्छम् ॥

—पञ्चिका

म्रौ म्यौ यान्तौ भवेतां सप्ताष्टरभिश्चन्द्रलेखा ॥ ९० ॥

मगण-रगण-मगण-यगण-यगणैः चन्द्रलेखा नाम वृत्तं भवति। सप्तभिः अष्टभिश्च यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में मगण, रगण, मगण और अन्त में दो यगण हों उसे **चन्द्रलेखा** नामक वृत्त कहते हैं। इसमें सात और आठ अक्षरों पर विराम होता है।

उदाहरण—

म. र. म. य. य.

S S S S I S S S S I S S I S S

जाह्नव्योष्णीषशाभा स्वाभाति शुभ्रांशुकाभा
दैत्यानां मुण्डजातैर्हारावली शोभते सा।
आशा वस्त्राण्यभूवन्भर्गस्य नेपथ्यकल्पे
शोभां भव्यां विधत्ते काश्चिन्नवां चन्द्रलेखाम् ॥

नोट—इस छन्द के साथ ही इस जाति के समस्त छन्दों की समाप्ति होती है। इसके बाद अष्टि नामक जाति प्रारम्भ होती है जिसके छन्दों के प्रत्येक पाद में १६ अक्षर होते हैं।

अथ [१६] अष्टिः

भ्रत्रिनगैः स्वरात्खमृषभगजविलसितम् ॥ ९१ ॥

भगण-नगण-त्रिनगणाश्च गुरुश्च तैः ऋषभगजविलसितं नाम वृत्तं भवति। स्वरात्सप्तमात्परं खं विरामो यदि तदेतिशेषः। सप्तसु यतिः पादान्ते च।

भावार्थ—जिस छन्द में भगण, रगण, तीन नगण तथा अन्त में एक गुरु हों **ऋषभगजविलसित** नामक छन्द कहते हैं। इसमें सात अक्षर और पादान्त में यति होती है।

उदाहरण—

भ. र. न. न. न. गु.

S I I S I S I I I I I I I I I S

यो हरिरुच्चखान खरतरनखशिखरैः
दुर्जयदैत्यसिंहसुविकटहृदयतटम् ।

किन्विह चित्रमेषमदखिलमपहृतवान्
कंसनिदेशहृप्यवृषभगजविलसितम् ॥

नजभजरैः सदा भवति वाणिनी गयुक्तैः ॥ ९२ ॥

नगण-जगण-भगण-जगण-रगणैः गुरुयुक्तैः वाणिनी नाम वृत्तं भवति ।

भावार्थ—जिस छन्द में नगण, जगण, भगण, जगण और रगण हों तथा अन्त में गुरु हो उसे **वाणिनी** नामक वृत्त कहते हैं ।

उदाहरण—

न. ज. भ. ज. र. गु.

। । । । ऽ । ऽ । । । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ

स्फुरतु ममाऽऽननोऽद्य ननु वाणिनीतिरम्यं
तव चरणप्रसादपरिपाकतः कवित्वम् ।
भव जलराशिपारकरणक्षमं मुकुन्दं
सततमहं स्तवैः स्वरचितैः स्तवानि नित्यम् ॥

—छन्दोमञ्जरी

नोट—यहाँ पर इस जाति के छन्द समाप्त हो गये । इसके बाद अत्यष्टिः नामक जाति प्रारम्भ होती है । इस जाति में आने वाले श्लोकों के प्रत्येक पाद में १७ अक्षर होते हैं । जिनमें छन्दों में शिखरिणी, हरिणी, पृथ्वी और मन्दाक्रान्ता सबसे प्रसिद्ध हैं जिनका वर्णन नीचे किया जाता है ।

अथ [१७] अत्यष्टिः

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी ॥ ९३ ॥

यगण-मगण-नगण-सगण-भगणैः लघुगुरुभ्यां च शिखरिणी नाम वृत्तं । भवती । रसैः षड्भिः, रुद्रैकादशभिश्छिन्ना यतिमती भवति ।

भावार्थ—जिस छन्द में यगण, मगण, नगण, सगण और भगण हों और अन्त में लघु और गुरु हों, उसे **शिखरिणी** नामक वृत्त कहते हैं । इसमें रस = छः और रुद्र ग्यारह अक्षरों के बाद विराम होता है ।

उदाहरण— य. म. न. स. भ. ल. गु.

। ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । । । ऽ

अयं शैलाघातक्षुभितवडवावक्त्रहुतभुक्
प्रचण्डक्रोधार्चिर्निचयकवलत्वं व्रजतु मे ।

समन्तादुत्सर्पद्घनतुमुलहेलाकलकलः,
पयोराशेरोघः प्रबलपवनास्फालित इव ॥

—उत्तररामचरित

श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया हुआ है।

यदि प्राच्या ह्रस्वः कमलनयने ! पञ्चगुरवः,
ततो वर्णाः पञ्च प्रकृतिसुकुमाराङ्गि ! लघवः।
त्रयोन्ये चोपान्त्याः सुतनु ! जघनाभोगसुभगे !
रसैरुद्रैर्यस्यां भवति विरतिः सा शिखरिणी ॥

मालिनी ही की भाँति शिखरिणी भी संस्कृत-कवियों का प्रिय छन्द रहा है। यद्यपि इसमें गाढ़बद्धता ही अच्छी लगती है तो भी कोमलकान्त पदावली के विधाता महाकवि कालिदास तथा जयदेव दोनों ने इस छन्द को अपनाया है। परन्तु शिखरिणी लिखने में सिद्धहस्त आचार्य तो भवभूति ही है जिनका आगे वर्णन किया जायेगा। यहाँ एक दो उदाहरण ही पर्याप्त होंगे। उदाहरण (कालिदास के शाकुन्तल से)—

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां
यदर्द्धे विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत्।
प्रकृत्या यद्वक्रं तदपि समरेखं नयनयोः
न मे दूरे किञ्चित् क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात् ॥

जयदेव का मुद्रालंकारविशिष्ट उदाहरण (गीतगोविन्द से)—

दुरालोकस्तोकस्तवकनवकाशोककलिका-
विकासः कासारोपवनपवनोऽपि व्यथयति।
अपि भ्राम्यद्भृङ्गीरणितरमणीया न मुकुल-
प्रसूतिश्चूतानां सखि ! शिखरिणीयं सुखयति ॥

क्षेमेन्द्र ने शिखरिणी का वर्णन करते हुए लिखा है कि जिस प्रकार शिखरिणी (पर्वत) के ऊपर चढ़ने में सहज ही में ओज की स्थिति होती है अर्थात् बल का रहना जरूरी होती है। उसी प्रकार शिखरिणी छन्द के निर्माण में ओज गुण आवश्यक होता है। तथा वही शिखरिणी छन्द जब उसके अन्त का विसर्ग लुप्त हो जाता है तो अत्यन्त उन्नति को, उत्कृष्टता को, प्राप्त हो जाता है।

शिखरिण्याः समारोहात् सहजैवौजसः स्थितिः ।
सैव लुप्तविसर्गान्तैः प्रयात्यत्यन्तमुन्नतिम् ॥ २।३१

उदाहरण (यथा मुक्ताकण का यह यह श्लोक)—

यथा रन्ध्रं व्योम्नश्चलजदधूमः स्थगयति,
स्फुल्लिङ्गानां रूपं दधति च यथा कीटमणयः ।
यथा विद्युज्ज्वालोल्लसनपरिपिङ्गाश्च ककुभ-
स्तथा मन्ये लग्नः पथिकतरुखण्डे स्मरदवः ॥

सारांश यह है कि शिखरिणी में समस्त पदावली तथा गाढबन्धता होनी चाहिये और पदान्त में विसर्ग का लोप है। जैसा कि उपर्युक्त श्लोक में दिखलाया गया है। इसके ठीक विपरीत भट्टश्यामल का यह श्लोक लीजिये, जिसमें ओजगुण का अभाव है तथा अनेक पदों के अन्त में विसर्ग है—

घृतो गण्डाभोगे मधुप इव बद्धोब्जविवरे,
विलासिन्या मुक्तो बकुलतरुमापुष्पयति यः ।
विलासो नेत्राणां तरुणसहकारप्रियसखः
स गण्डूषः सीधोः कथमिव शिरः प्राप्स्यति मधोः ॥

क्षेमेन्द्र शिखरिणी के विषय में फिर लिखते हैं कि यदि इस छन्द के पद छिन्न रहते हैं अर्थात् पद अलग अलग रहते हैं, पदावली असमस्त होती है तब उसका स्वरूप उसी प्रकार से नष्ट हो जाता है जिस प्रकार मोती की माला की मनिका उसको जोडने वाले सूत्र के टूट जाने पर शोभा को प्राप्त नहीं करती है, सुशोभित नहीं होती है।

शिखरिण्याः पदैश्छिन्नैः स्वरूपं परिहीयते ।
मुक्तालतायाः निःसूत्रमुक्तैर्मुक्ताफलैरिव ॥ २।३२

उदाहरण (यथा भवभूति का निम्नांकित श्लोक)—

असारं संसारं परिमुषितरत्नं त्रिभुवनं,
निरालोकं लोकं मरणशरणं बान्धवजनम् ।
अदर्पं कन्दर्पं जननयननिर्माणमफलं
जगज्जीर्णारण्यं कथमसि विधातुं व्यवसितः ॥ उ. रा.

क्षेमेन्द्र ने शिखरिणी के प्रयोग के विषय में लिखा है कि उपपन्नपरिच्छेदकाल में शिखरिणी अच्छी लगती है।

उपपन्नपरिच्छेदकाले शिखरिणी मता ।

उपपन्नपरिच्छेद में भर्तृहरि का यह श्लोकः—

भवन्तो वेदान्तप्रणिहितधियामत्र गुरवो,
विचित्रालापानां वयमपि कवीनामनुचराः ।
तथाप्येवं ब्रूमो न हि परहितात्पुण्यमपरं
न चास्मिन्संसारे कुवलयदृशो रम्यमपरम् ॥

राजशेखर के मतानुसार संस्कृत कवियों में भवभूति ही शिखरिणी लिखने में सर्वश्रेष्ठ हैं। आप लिखते हैं कि भवभूति की शिखरिणी स्वच्छन्द नदी की भाँति है। जिस प्रकार मयूरी घने बादलों को देख कर नाचने लगती है उसी प्रकार उनकी शिखरिणी घने सन्दर्भ से—ससास बहुला, समस्त पदावली से—युक्त होकर नाचती है अर्थात् अधिक सुन्दर लगती है।

भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी ।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति ॥ ३।३३.

उदाहरण (यथा भवभूति के उत्तररामचरित से)—

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशाद्,
वियोगे दीर्घेऽस्मिन् झटिति घटनोत्तम्भितमिव ।
प्रसन्नं सौजन्यादपि च करुणैर्गाढ़करुणं
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव ॥

—उत्तररामचरित

जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ॥ ९४ ॥

जगण-सगण-जगण-सगण-यगणैः लघुगुरुभ्यां च पृथ्वी नाम वृत्तं भवति। वसुभिः अष्टभिः ग्रहैः नवभिश्च यतिमती भवति।

भावार्थ—जिस छन्द में जगण, सगण, जगण, सगण और यगण हों तथा अन्त में लघु, गुरु हों तो उसे **पृथ्वी** नामक छन्द कहते हैं। वसु—आठ और ग्रह—नव अक्षरों के बाद इसमें विराम होता है।

उदाहरण— (मुद्रालंकारविशष्ट)

ज. स. ज. स. य. ल. गु.

ऽ ।। ।ऽ । ऽ ।।। ऽ । ऽऽ । ऽ

दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुमत्यास्पदं,
गतिर्जनमनोरमा विजितरम्भमूरुद्वयम् ।

रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखभ्रुवौ,
अहो विबुधयौवतं वहसि तन्वि ! पृथ्वीगता ॥

—जयदेव

श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण निम्नांकित है ।

द्वितीयमलिकुन्तले ! गुरुषडष्टमद्वादशं,
चतुर्दशमथ प्रिये ! गुरु गभीरनाभिह्लदे ।
सपञ्चदशमान्तिमं तदनु यत्र कान्ते यति-
र्गिरीन्द्रफणिभृत् कुलैर्भवति सुभ्रु पृथ्वी हि सा ॥

पृथ्वी छन्द के विषय में क्षेमेन्द्र लिखते हैं कि जब इस छन्द में समास नहीं होते हैं तभी यह छन्द सुन्दर लगता है । परन्तु यही छन्द समास की ग्रन्थियों के कारण संकुचित हो जाता है—असुन्दर मालूम होता है ।

असमासः पदैर्भाति पृथ्वी पृथ्वी पृथक्स्थितैः ।
समासग्रन्थिभिः सैव याति संकोचखर्वताम् ॥ २।२७

पृथक्पदा (यथा साहिल का)—

कचग्रहमनुग्रहं दशनखण्डनं मण्डनं
दृगञ्चनमवञ्चनं मुखरसार्पणं तर्पणम् ।
नखार्दनमतर्दनं दृढमपीडनं पीडनं,
करोति रतिसंगरे मकरकेतनः कामिनाम् ॥

इसके ठीक विपरीत समास से युक्त (यथा क्षेमेन्द्र का)—

कचग्रहसमुल्लसत्कमलकोषपीडाजड-
द्विरेफकलकूजितानुकृतसीत्कृतालङ्कृताः ।
जयन्ति सुरतोत्सवव्यतिकरे कुरङ्गीदृशां
प्रमोदमदनिर्भरप्रणयचुम्बिनो विभ्रमाः ॥

पुनः क्षेमेन्द्र लिखते हैं कि पृथ्वी छन्द आकार से गम्भीर अर्थात् आकार से युक्त, ओजगुण को बढ़ाने वाले अक्षरों के द्वारा समास की ग्रन्थि से युक्त होने पर भी दीर्घता को प्राप्त होता है ।

पृथ्वी साकारगम्भीरैः ओजः सर्जिभिरक्षरैः ।
समासग्रन्थियुक्तापि, याति प्रत्युत दीर्घताम् ॥ २।२८

यथा (भट्टनारायण का यह श्लोक)—

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तक-
प्रचण्डघनगर्जितप्रतिरुतानुकारी मुहुः ।
रवः श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकन्दरः
कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः श्रुतः ।।

पृथ्वी छन्द के प्रयोग के विषय में क्षेमेन्द्र लिखते हैं कि आक्षेप के साथ क्रोध में, तथा किसी को धिक्कारने में यह छन्द उपयुक्त होता है।

साक्षेपक्रोधधिक्कारे, परं पृथ्वीभरक्षमा ।। ३।२१

आक्षेप में यथा (यशोवर्मा का यह श्लोक)—

स यस्य दशकन्धरं कृतवतोऽपि कक्षान्तरे,
गतः स्फुटमवन्ध्यतामधिपयोधिसान्ध्यो विधिः ।
तदात्मज इहाङ्गदः प्रहित एष सौमित्रिणा,
क्व स क्व स दशाननो ननु निवेद्यतां राक्षसः ।।

दिङ्मुनि वंशपत्रपतितं भरनभनलगैः ।। ९५ ।।

भगण-रगण-नगण-भगण-नगणैः लघुगुरुभ्यां च वंशपत्रपतितं नाम वृत्तं भवति। दिशो दश, मुनयः सप्तेति यतिनियमः ।

भावार्थ—जिस छन्द में भगण, रगण, नगण, भगण, नगण और अन्त में लघु और गुरु हों उसे **वंशपत्रपतितं** नामक वृत्त कहते हैं। इसमें दिशा—दश और मुनि—सात अक्षरों के बाद बिराम होता है।

उदाहरण—

भ. र. न. भ. न. ल. गु.

S I I S I S I I I S I I I I I S

अद्यकुरुष्वकर्मसुकृतं यदि परदिवसे
मित्र ! विधेयमस्ति भवतः किमु चिरयसि यत् ।
जीवितमल्पकालकलना-लघुतरलं,
नश्यति वंशपत्रपतितं हिमसलिलमिव ।।

—छन्दोवृत्ति

रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा ।। ९६ ।।

नगण-सगण-मगण-रगण-सगणैः लघुगुरुभ्यां च हरिणी नाम वृत्तं भवति षट्सु, चतुर्षु, सप्तसु च त्रिषु स्थानेषु यति ।

भावार्थ—जिस छन्द में नगण, सगण, मगण, रगण, सगण तथा अन्त में लघु और गुरु हों, उसे **हरिणी** नामक छन्द कहते हैं । इसमें रस—छः, युग—चार और हय—सात अक्षरों पर विराम होता है ।

उदाहरण—

न. स. म. र. स. ल. गु.

I I I I I S S S S S I S I I S I S

न समरसनाः कालं भोगाश्चलं धनयौवनं
कुरुत सुकृतं यावन्नेयं तनुः प्रविशीर्यते ।
किमपि कलना कालस्येयं प्रधावति सत्वरा
तरुणहरिणीसन्त्रस्तेव प्लवप्रविसारिणी ॥

—सुवृत्ततिलक

श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया हुआ है—

सुमुखि लघवः प्रश्च प्राच्यास्ततो दशमान्तिकं,
तदनु ललितालापे ! वर्णौ तृतीयचतुर्थकौ ।
प्रभवति पुनर्यत्रोपान्त्यः स्फुरत्कनकप्रभे !
यतिरपि रसैर्वेदैरश्वैः स्मृता हरिणीति सा ॥

इस छन्द के विषय में क्षेमेन्द्र का कथन है कि शीघ्रता से चञ्चल, असमसित, छोटे-छोटे पदों के द्वारा हरिणी सुन्दर लगती है । परन्तु जब पद मन्थर गति से चलते हैं अर्थात् शीघ्रता से गमन नहीं करते, तब वह गाँठ में बँधी हुई वस्तु की भाँति जीवन-रहित—असुन्दर हो जाती है ।

त्वरातरलविच्छेदैर्विभाति हरिणी पदैः ।
मन्थरैर्ग्रन्थिबद्धेव याति निःस्पन्दसङ्गताम् ॥

तरलपदा यथा (दीपक का यह श्लोक)—

तनुधनहरक्रूरस्तेनोत्कटां विकटाटवीं
तरति तरसा शौर्योत्सेकात्स्वसार्थवशाज्जनः ।
पुरवरवधूलीलावल्गत्कटाक्षबलाकुले,
नगरनिकटे पन्थाः पान्थ ! स्फुटं दुरतिक्रमः ॥

मन्थर पदों से युक्त (भट्टेन्दुराज का यह श्लोक)—

गुण परिचयस्तीर्थे वासः स्थिरोभयपक्षता,
वपुरतिदृढं वृत्तं सम्यक्सखे ! तव किं पुनः ।
स्मरति सुमते यस्त्वां पातुं दृशा विनिमेषया
बडिश विषमं तस्याक्षेपं करोषि सहासुभिः ॥

क्षेमेन्द्र पुनः कहते हैं कि जिस हरिणी छन्द के तीन पादों में विश्रान्त से पद रहते हैं अर्थात् पदों की गति धीमी रहती है तथा चौथे पाद में पदों की गति लहर की भाँति ही शीघ्र या चंचल होती है वह छन्द हृदय को हरने वाला होता है—

त्रिषु पादेषु विश्रान्तविलासैर्ललितापदैः
अन्ते तरंगितगतिर्हरिणी हारिणीतराम् ॥ ३।३०

यथा (भट्टेन्दुराज ही का निम्नांकित श्लोक)—

उपपरिसरं गोदावर्याः परित्यजताध्वगाः !,
सरणिमपरो मार्गस्तावद्भवद्भिरवेक्ष्यताम् ।
इह हि विहितो रक्ताशोकः कयापि हताशया,
चरणनलिनन्यासोदञ्चन्नवाङ्कुरकञ्चुकः ॥

हरिणी के प्रयोग के विषय में क्षेमेन्द्र लिखते हैं कि उदारता से रुचिर औचित्य के विचार में हरिणी का प्रयोग समुचित होता है ।

औदार्यरुचिरौचित्यविचारे हरिणी वरा ॥ ३।२०

यथा उदारता में (भर्तृहरि का यह श्लोक)—

विपुलहृदयैरन्यैः कैश्चिज्जगज्जनितं पुरा
विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा ।
इह हि भवनान्यन्ये धीराश्चतुर्दश भुञ्जते,
कति पुरस्वाम्ये पुंसां क एष मदज्वरः ॥

मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत् ॥ ९७ ॥

मगण-भगण-नगण-तगण-तगणैः गुरुभ्यां च मन्दाक्रान्ता नाम वृत्तं भवति । जलधिषडगैः—चतुर्भिः, षड्भिः, अगैः—पर्वतैः सप्तभिश्च यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और अन्त में

दो गुरु हों उसे **मन्दाक्रान्ता** नामक वृत्त कहते हैं। इसमें चार, छः और सात अक्षरों के बाद विराम होता है।

उदाहरण—

म. भ. न. त. त. गु. गु.

S S S S I I I I I S S I S S I S S

नानाऽऽश्लेषप्रकरणचणाचारुवर्णोज्वलाङ्गी
नानाभावाकलितरसिकश्रेणिकान्तान्तरङ्गा।
मुग्धस्निग्धैर्मृदुमृदुपदैः क्रीडमाना पुरस्तात्
मन्दाक्रान्ता भवति कविताकामिनी कौतुकाय॥

श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया हुआ है—

चत्वारः प्राक्सुतनु गुरवो द्वादशैकादशौ चे-
न्मुग्धे ! वर्णौ तदनु कुमुदामोदिनि ! द्वादशान्त्यौ।
तद्वच्चान्त्यौ युगरसहयैर्यत्र कान्ते ! विरामो
मन्दाक्रान्तां प्रवरकवयस्तन्वि ! तां सङ्गिरन्ते॥

मन्दाक्रान्ता छन्द भी संस्कृत कवियों का एक परम प्रिय छन्द रहा है। अनेक संस्कृत कवियों ने इस छन्द का प्रचुरता से व्यवहार किया है। परन्तु महाकवि कालिदास ने इस छन्द का जिस सुन्दरता तथा प्रचुरता से प्रयोग किया है उतना संस्कृत का दूसरा कोई भी कवि नहीं कर सका है। कालिदास ने तो अपने सम्पूर्ण 'मेघदूत' नामक खण्डकाव्य की रचना केवल इसी एक ही छन्द में की है। अपनी इसी विशेषता के कारण कालिदास मन्दाकान्ता वृत्त लिखने में निपुण माने जाते हैं। अनेक वृत्तों में काव्य-रचना तो सरल है परन्तु अपने विचारों को केवल एक ही वृत्त के साँचे में ढाल कर रखना निःसन्देह ही अतिदुष्कर कार्य है। परन्तु इस महाकवि ने अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल पर केवल मन्दाक्रान्ता नामक एक ही छन्द में मेघदूत की रचना कर संस्कृत कवियों के सामने एक नया आदर्श उपस्थित किया है। कालिदास की रचना इतनी मधुर, भावमयी तथा चित्ताकर्षक कि उसका एक, दो उदाहरण देने का लोभ हम संवरण नहीं कर सकते।

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं,
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां वर्हभारेषु केशान्।

उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्,
हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि ! सादृश्यमस्ति ॥ उ. मे.

एक दूसरा उदाहरण लीजिये—

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ॥

मन्दाक्रान्ता की सुन्दरता के विषय में क्षेमेन्द्र ने लिखा है कि—

मन्थराक्रान्तविस्रब्धैश्चतुर्भिः प्रथमाक्षरैः ।
मध्यषट्केऽतिचतुरे मन्दाक्रान्ता विराजते ॥ २।३४ ॥

चूँकि इस छन्द का नाम मन्दाक्रान्ता (मन्द + आक्रान्त) अर्थात् धीरे-धीरे चढ़ना है इसीलिये इसमें पहिले वर्णविन्यास मन्द होना चाहिये और बाद में उसकी गति द्रुत होनी चाहिये । जैसे कालिदास का यह श्लोक—

ब्रह्मावर्तं जनपदमधश्छायया गाहमानः,
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः ।
राजन्यानां शितशरशतैः यत्र गाण्डीवधन्वा,
धारासारैस्त्वमिव कमलान्यभ्यषिञ्चन्मुखानि ॥

आदिमध्येतुल्या (यथा कालिदास का यह श्लोक)—

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः,
शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु,
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥

मन्दाक्रान्ता के प्रयोग के विषय में क्षेमेन्द्र लिखते हैं कि वर्षा और प्रवास के व्यसन में अर्थात् प्रवास दुःख के वर्णन में मन्दाक्रान्ता अच्छी लगती है ।

प्रावृट्प्रवासव्यासने मन्दाक्रान्ता विराजते ॥ ३।२१

प्रावृट्वर्णन (यथा कालिदास का)—

तस्मिन्नद्रौ कतिचितबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ।
आसाढ़स्य प्रथमविदसे मेघमाश्लिष्ट सानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥

प्रवासव्यसनवर्णन यथा (कालिदास का यह श्लोक)—

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ,
शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ।
पश्चादावां विरहगुणितं तं तमात्माभिलाषं
निर्वेक्ष्यावः परिणितशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥ मे. दू.

क्षेमेन्द्र ने लिखा है कि कालिदास की मन्दाक्रान्ता उनके वश में होकर उसी प्रकार सुन्दर रीति से चलती है जिस प्रकार कम्बोज देश की घोड़ी किसी घोड़े को सिखलाने वाले अच्छे सईस के हाथ में पड़कर सुन्दर गति से (दुलकी, कदम, सरपट) चलने लगती है ।

सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति ।
सदश्वदमकस्येव काम्बोजतुरगाङ्गना ॥ ३।३४

कहने का तात्पर्य यह है कि कालिदास मन्दाक्रान्ता लिखने में अत्यन्त निपुण हैं । इनके हाथों में पड़कर यह छन्द अच्छी तरह से मँज गया है ।

उदाहरण यथा मेघदूत से—

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा,
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती ।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां शारिकां पञ्जरस्थां
कच्चित् भर्तुः स्मरसि रसिके ! त्वं हि तस्य प्रियेति ॥

हयदशभिर्नजौ भजजला गुरुनर्कुटकम् ॥ ९८ ॥

नगण-जगण-भगण-जगण-जगणैः लघुगुरुभ्यां च नर्कुटकं नाम वृत्तं भवति । हयैः—सप्तभिः दशभिश्च यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में नगण, जगण, भगण तथा दो जगण हों और अन्त में लघु तथा गुरु हों, उसे **नर्कुटक** नामक छन्द कहते हैं । सात और दश अक्षरों पर यति है ।

उदाहरण—

न. ज. भ. ज. ज. ल. गु.

। । । । ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । । ऽ

निजभुजजैर्विशालगुणविक्रमकीर्तिभरैः
प्रविदधता सुधांशुधवलं भवता भुवनम् ।

कथय कथं कृतेयमतिरागवती जनता,
चरितमपूर्वमेव तव कस्य न नर्कुटकृत् ॥

—सुवृत्ततिलक

मुनिगुहकार्णवैः कृतयति वद कोकिलकम् ॥ ९९ ॥

मुनयः—सप्त गुहस्य स्कन्दस्य कानि मुखानि—षट्, अर्णवाः—चत्वारस्तैः कृता यतिर्यत्र तन्नर्कुटकमेव कोकिलकं वद ब्रूहि। यतिभेदेन तस्यैव अन्या संज्ञेति ज्ञेयम्।

भावार्थ—नर्कुटक छन्द को ही **कोकिलक** नामक छन्द कहते हैं। इसमें मुनि—सात, स्कन्द के मुख अर्थात् छः और अर्णव—चार इन अक्षरों के बाद यति होती है। केवल यतिभेद से ही छन्द में नामभेद हो गया है।

उदाहरण—

न. ज. भ. ज. ज. ल. गु.

। । । । ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । । ऽ

लसदरुणेक्षणं मधुरभाषणमोदकरं
मधुसमयागमे सरसकेलिभिरुल्लसितम्।
अलिललितद्युतिं रविसुतावनकोकिलकं
ननु कलयामि तं सखि ! सदा हृदि नन्दसुतम् ॥

—छन्दोमञ्जरी

अब यहाँ से धृति नामक जाति प्रारम्भ होती है जिसके छन्दों के प्रत्येक-चरण में १८ अक्षर होते हैं। इस जाति में केवल एक ही छन्द 'कुसुमलता-वेल्लिता' नामक है और वह भी है अत्यन्त अप्रसिद्ध।

अथ [१८] धृतिः—

स्याद्भूतर्त्वश्वैः कुसुमलतावेल्लिता म्तौ नयौ यौ ॥ १०० ॥

मगण-तगण-नगण-त्रियगणैः कुसुमलतावेल्लिता नाम वृत्तं भवति। भूतानि—पञ्च,ऋतवः—षट्, अश्वाः—सप्त यतिनियमः।

भावार्थ—जिस छन्द में मगण, तगण, नगण तथा तीन यगण हों उसे **कुसुमलतावेल्लिता** नामक वृत्त कहते हैं। इसमें भूत—पाँच, ऋतु—छः और अश्व—सात इन अक्षरों के बाद विराम होता है।

म. त. न. य. य. य.

S S S S S । । । । । S S । S S । S S

धन्यानामेताः कुसुमितलतावेल्लितोत्फुल्लवृक्षाः
सोत्कण्ठं कूजत्परभृतकलालापकोलाहलिन्यः ।
मध्वादौ माद्यन्मधुकरकलोद्गीतझङ्काररम्या
ग्रामान्तस्रोतः परिसरभुवः प्रीतिमुत्पादयन्ति ॥

अब इसके बाद अतिधृतिः जाति के छन्द प्रारम्भ होते हैं। इस जाति के छन्दों के प्रत्येक पाद में १९ अक्षर होते हैं। संयोग से इस जाति में धृति की भाँति केवल एक ही छन्द शार्दूलविक्रीडित नामक है। परन्तु यह वृत्त संस्कृत में अत्यन्त प्रसिद्ध है तथा इसका प्रचार भी अत्यधिक है।

अथ [१९] अतिधृतिः

सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १०१ ॥

मगण-सगण-जगण-सगण-तगण-तगणैः गुरुणा च शार्दूलविक्रीडितं नाम वृत्तं भवति। सूर्यैः—द्वादशभिः अश्वैः—सप्तभिश्च यति।

भावार्थ—जिस छन्द में मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और अन्त में एक गुरु हों, उसे **शार्दूलविक्रीडित** नामक वृत्त कहते हैं। इसमें सूर्य-बारह और अश्व—सात अक्षरों के बाद विराम अर्थात् यति होती है ;

उदाहरण—

म. स. ज. स. त. त. गु.

S S S । । S । S । । । S S S । S S । S

ये याताधिकमासहीनदिवसा ये चापि तच्छेषके
तेषामैक्यमवेक्ष्य यो दिनगणान्ब्रूतेऽत्र कल्पे गतान् ।
संश्लिष्टस्फुटकुट्टकोद्भटबहुक्षुद्रैणविद्रावणे,
तस्याऽव्यक्तविदो विदो विजयते शार्दूलविक्रीडितम् ॥

—सिद्धान्तशिरोमणि

श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार से दिया है।

आद्यं यत्र गुरुत्रयं प्रियतमे ! षष्ठं ततश्चाष्टमं
सन्त्येकादशतस्त्रयस्तदनु चेदष्टादशाद्यान्तिमाः ।

मार्तण्डैर्मुनिभिश्च यत्र विरतिः पूर्णेन्दुबिम्बानने
तद्वृत्तं प्रवदन्ति काव्यरसिकाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ४२ ॥

महाकवि जयदेव का मुद्रालंकार विशिष्ट इस छन्द का निम्नांकित उदाहरण संस्कृत साहित्य में अपना सानी नहीं रखता ।

आवासो विपिनायते प्रियसखी मालापि जालायते,
तापोऽपि श्वसितेन दावदहन ज्वालाकलापायते ।
सापि त्वद्विरहेण हन्त ! हरिणी रूपायते हा कथं
कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयन्शार्दूलविक्रीडितम् ॥

संस्कृत साहित्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द बहुत ही प्रसिद्ध है । जहाँ लड़ाई का वर्णन करना होता है, किसी निराश आदमी में आशा का सञ्चार करना होता है, जहाँ समासगर्भा समसित पदावली अभीष्ट होती है वहाँ पर कविगण इसी छन्द का सहारा लेते हैं । संस्कृत कवियों में राजशेखर, भवभूति, भट्ट-नारायण तथा श्रीहर्ष ने इस छन्द का सुन्दर रीति से व्यवहार अपने नाटक तथा काव्यों में किया है । स्थानाभाव से यहाँ पर सब कवियों से उद्धृत उदाहरण नहीं दिये जा सकते, अतः हमें एक, दो उदाहरण से ही सन्तोष करना होगा ।

उदाहरण (महाकवि भवभूति का उत्तरामचरित से)—

एते ते कुहरेषु गद्गद्नदद्गोदावरीवारयो,
मेघालम्बितमौलि नीलशिखराः क्षोणीभृतो दक्षिणाः ।
अन्योन्यप्रतिघातसङ्कुलचलत्कल्लोलकोलाहलै-
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्सङ्गमाः ॥ २।३०

अन्य उदाहरण (श्रीहर्ष के नैषधीयचरित से)—

पुष्पेषुस्त्रिकुरेषु ते शरचयं त्वद्भालमूले धनू,
रौद्रे चक्षुषि तज्जितस्तनुमनुभ्राष्ट्रं च यस्त्रिक्षिपे ।
निर्विद्याश्रयदाश्रयं स वितनुस्त्वां तज्जयायाधुना,
पत्रालीस्त्वदुरोजशैलनिलया तत्पर्णशालायते ॥ ३।१२८.

श्रीहर्ष का ही दूसरा उदाहरण—

चेतोजन्मशरप्रसूनमधुभिर्व्यामिश्रतामाश्रयत्
प्रेयोदूतपतङ्गपुङ्गवगवीहैयङ्गवीनं रसात् ।
स्वादं स्वादमसीममिष्टसुरभि प्राप्तापि तृप्तिं न सा
तायं प्राप, नितान्तमन्तरतुलामानर्च्छ मूर्च्छामपि ॥

क्षेमेन्द्र ने शार्दूलविक्रीडित के गुण-दोषों का अपने ग्रन्थ सुवृत्ततिलक में विस्तृत विवेचन किया है। आप लिखते हैं कि जिस शार्दूलविक्रीडित छन्द में आदि के अक्षर आकार से युक्त हों तथा पाद के पर्यन्त अर्थात् अन्त के अक्षर विसर्ग के साथ हों वह तेज से जीवित ऊर्जित को प्राप्त करती है अर्थात् वह अत्यन्त ओज गुण विशिष्ट होता है। आप कहते हैं—

साकाराद्यक्षरैः पादपर्यन्तैः सविसर्गकैः।
शार्दूलक्रीडितं धत्ते तेजो जीवितमूर्जितम् ॥ २।३५

उपर्युक्त लक्षण से विशिष्ट भट्टश्यामल का उदाहरण—

आलानं जयकुञ्जरस्य दृषदां सेतर्विपद्वारिधेः,
पूर्वाद्रिः करवालचण्डमहसो लीलोपधानं श्रियः।
संग्रामामृतसागरप्रमथनक्रीडाकृतौ मन्दरो
राजन्राजति वीरवैरिवनितावैधव्यदस्ते भुजः ॥

इसमें यह ध्यान रखना चाहिये कि आलानं, पूर्वाद्रिः आदि आरम्भ के सब शब्द आकारयुक्त हैं तथा अन्त में चारों पादों में विसर्ग हैं। अतः यह श्लोक अत्युत्तम है। इसके ठीक विपरीत लाट डिण्डीर का यह श्लोक लीजिये—

चित्रं तावदिदं सुरेन्द्रभवनान्मन्दाकिनीपाथसा,
केनाप्युत्तमतेजसा नृपतिना क्ष्मामण्डलं मण्डितम्।
नातश्चित्रतरं निशाकरकला लावण्यदुग्धोदधे !
भूमेर्यद्भुवता विरिञ्चिनगरी कीर्तिप्लवैः प्लाव्यते ॥

क्षेमेन्द्र फिर कहते हैं कि शार्दूलविक्रीडित छन्द में यदि विसर्ग का 'ओ' हो जाय तो वह कठिनता से पढा जाता है और नीचे, ऊँचे पदों की भाँति कष्ट देता है—

विसर्जनीयस्योत्वेन, पदैर्निम्नोन्नतैरिव।
शार्दूलक्रीडितं याति, पाठे सायासतामिव ॥

उदाहरण (मुक्ताकण का)—

लीलाचमरडम्बरो रतिपतेर्बालाम्बुदश्रेणयो
रागोद्दण्डशिखण्डिनो मुखविधूद्धूतास्तमोविभ्रमाः।
सौगन्ध्योद्धतधावदाकुलवलन्मत्तालिमालाकुलो
धम्मिल्लो हरिणीदृशो विजयते स्रस्तो रतिव्यत्यये ॥

क्षेमेन्द्र लिखते हैं कि यदि शार्दूलविक्रीडित के पूर्वार्द्ध में पादविच्छिन्न अर्थात् अलग-अलग रहते हैं—पदावली असमसित होती है—तथा उत्तरार्ध में समास से युक्त पाद होते हैं तब यह छन्द अत्यन्त सुन्दर लगता है और इसके विपरीत अधम होता है।

विच्छिन्नपादं पूर्वार्द्धे, द्वितीयार्धे समासवत्।
शार्दूलक्रीडितं भाति विपरीतमतोऽधमम् ॥ २।३७

पूर्वार्द्ध में यथा भवभूति का यह श्लोक—

अज्ञानाद्यदि वाधिपत्यरभसादस्मत्परोक्षं हृता,
सीतेयं प्रविमुच्यतां शठ ! मरुत्पुत्रस्य हस्तेऽधुना।
नो चेल्लक्ष्मणमुक्तमार्गणगणच्छेदोच्छलच्छोणित-
च्छत्रच्छन्नदिगन्तमन्तकपुरं पुत्रैर्वृतो यास्यसि ॥

इसके विपरित रिस्सु का यह श्लोक लीजिये—

स्नातुं वाञ्छसि किं मुधैव धवलक्षीराच्छफेनच्छटा-
छायाहारिणि वारिणि द्युसरितो डिण्डीरविस्तारिणी।
आस्ते ते कलिकालकल्मषमषीप्रक्षालनैकक्षमा,
कीर्तिः सन्निहितैव सप्तभुवन स्वच्छन्द मन्दाकिनी ॥

क्षेमेन्द्र का कथन है कि इस छन्द के आदि और अन्त में गुण का उत्कर्ष हो तो यह मध्य में उन्नति को प्राप्त करता है।

आद्यन्तयोर्गुणोत्कर्षकान्त्या सर्वातिशायिनोः।
शार्दूलक्रीडितं धत्ते, मन्ये तद्गौरवोन्नतिम् ॥

यथा (कालिदास का)—

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं,
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।
विस्रब्धैः क्रियतां वराहपतिभिः मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रान्तिं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः ॥

अन्त में क्षेमेन्द्र का यह कथन है कि यदि शार्दूलविक्रीडित के आदि और अन्त में आकार का अभाव हो तथा अन्त में विसर्ग न हों तो वह अपने असली स्वरूप को प्राप्त नहीं करता है अर्थात् वह सुन्दर नहीं लगता है।

आद्यन्ताकारविरहात्पर्यन्ते चाविसर्गतः ।
शार्दूलक्रीडितं स्वस्य रूपं नैवोपलभ्यते ॥ ३।३९ ।

यथा (श्री यशोवर्मा का)—

यत्त्वन्नेत्रसमानकान्तिसलिले मग्नं तदिन्दीवरं
मेघैरन्तरितः प्रिये तव मुखच्छायानुकारी शशी ।
येऽपि त्वद्गमनानुकारिगतयस्ते राजहंसा गता-
स्त्वत्सादृश्यविनोदमात्रमपि मे दैवेन न क्षम्यते ॥

क्षेमेन्द्र ने लिखा है कि राजा आदि की वीरता की प्रशंसा में यह छन्द अत्यन्त सुन्दर लगता है—

शौर्यस्तवे नृपादीनां शार्दूलक्रीडितं मतम् ।

शौर्यस्तव में श्रीचक्र का श्लोक यथा—

नेतुं नौभिरिभा न यान्ति हृतिभिस्तार्याः कियन्तो हया-
स्तज्जानुद्वयसेन देव ! पयसा सैन्यं सयुत्तार्यताम् ।
नो चेद्भ्रूभङ्गभयद्रुतारिवनिता नेत्र प्रणालीलुठद्-
बाष्पाम्भः प्लवपूरितोभयतटी द्राग्वत्स्यंतीरावती ॥

क्षेमेन्द्र का यह दृढ़ मत है कि संस्कृत कवियों में शार्दूलविक्रीडित लिखने से उसी प्रकार राजशेखर सबसे अधिक प्रख्यात हैं जिस प्रकार से पर्वत अपनी ऊँची चोटियों के द्वारा प्रसिद्धि को प्राप्त करता है । आप कहते हैं—

शार्दूलक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः ।
शिखरीव परं वक्रैः सोल्लेखैरुच्चशेखरः ॥

अब 'कृतिः' नामक जाति प्रारम्भ होती है । जिसके छन्दों के प्रत्येक पाद में २० अक्षर होते हैं । इस जाति में केवल दो ही छन्द हैं और वह भी अत्यन्त अप्रसिद्ध है ।

अथ [२०] कृतिः—

ज्ञेया सप्ताश्वषड्भिर्मरभनययुताम्लौ गः सुवदना ॥ १०२ ॥

मगण-रगण-भगण-नगण-यगण-भगणैः लघुगुरुभ्यां च सुवदना नाम वृत्तं भवति । सप्तभिः षड्भिश्च यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, भगण तथा

अन्त में लघु, गुरु हों, उसे सुवदना नामक छन्द कहते हैं। इसमें सात, सात तथा छः अक्षरों के बाद विराम होता है।

उदाहरण—

म. र. भ. न. य. भ. ल. गु.

S S S S I S S I I I I I I S S S I I I S

प्रत्याहृत्येन्द्रियाणि त्वदितरविषयान्नासाग्रनयना
त्वां ध्यायन्ती निकुञ्जे परतरपुरुषं हर्षोत्थपुलका।
आनन्दाश्रुप्लुताक्षी वसति सुवदना योगैकरसिका,
कामार्ति व्यक्तुकामा ननु नरकरिपो ! राधा मम सखी ॥

—छन्दोमञ्जरी

त्री रजौ गलौ भवेदिहेदृशेन लक्षणेन वृत्त नाम ॥ १०३ ॥

त्रिवारं रगण-जगणैः गुरु-लघूभ्याञ्च वृत्तं नाम वृत्तं भवति। अत्र पादान्ते यतिः।

भावार्थ—जिस छन्द में तीन बार रगण-जगण का प्रयोग हो तथा अन्त में एक गुरु और लघु हों, उसे **वृत्त** नामक छन्द कहते हैं। इसके पाद के अन्त में यति होती है।

उदाहरण—

र. ज. र. ज. र. ज. गु. ल.

S I S I S I S I S I S I S I S I S I S I

जन्तुमात्रदुःखकारिकर्मनिर्मितं भवत्यनर्थहेतुः
तेन सर्वमात्मतुल्यमीक्षमाण उत्तमं सुखं लभस्व।
विद्धि बुद्धिपूर्वकं ममोपदेशवाक्यमेतदादरेण,
वृत्तमेतदुत्तमं महाकुलप्रसूतजन्मनां हिताय ॥

—छन्दोमञ्जरी

अब 'प्रकृतिः' नाम की जाति प्रारम्भ होती है जिसमें स्रग्धरा नामक एक ही छन्द होता है। यह छन्द अत्यन्त प्रसिद्ध है, इसके प्रत्येक पाद में इक्कीस अक्षर होते हैं।

अथ [२१] प्रकृतिः—

म्रभ्नैर्यानां क्रमेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धराकीर्तितेयम् ॥ १०४ ॥

मगण-रगण-भगण-नगण-त्रियगणैः स्रग्धरा नाम वृत्तं भवति। त्रिवारं मुनिषु यतियुता—सप्तसु, सप्तसु, सप्तसु च यतिमतीत्यर्थः।

भावार्थ—जिस छन्द में मगण, रगण, भगण, नगण तथा अन्त में तीन यगण हों उसे **स्रग्धरा** नामक छन्द कहते हैं। इसमें मुनि अर्थात् सात, सात अक्षरों पर तीन बार विराम होता है।

उदाहरण—

म. र. भ. न. य. य. य.

S S S S I S S I I I I I I S S I S S I S S

सारारम्भानुभावप्रियपरिचययास्वर्गरङ्गाङ्गनानां
लीला कर्णावतंसश्रियमतनुगुणश्लेषया संश्रयन्त्या।
आभाति व्यक्तमुक्ताविचकितलवलीवृन्दकुन्देन्दुकान्त्या,
त्वत्कीर्त्या भूषितेयं भुवनपरिवृढ़ै! स्रग्धरेव त्रिलोकी ॥

—सुवृत्ततिलक

श्रुतबोध में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया हुआ है—

चत्वारो यत्र वर्णाः प्रथममलघवः षष्ठकः सप्तमोऽपि,
द्वौ तद्वत्षोडशाद्यौ मृगमदतिलके! षोडशान्त्यौ तथाऽन्त्यौ।
रम्भा स्तम्भोरुकान्ते! मुनिमुनिमुनिभिर्दृश्यते चेद्विरामो
बाले! वन्द्यैः कवीन्द्रैः सुतनु निगदिता स्रग्धरा सा प्रसिद्धा ॥

इस छन्द का एक सुन्दर उदाहरण श्रीहर्ष का इस प्रकार है—

अस्तित्वं कार्यसिद्धेः स्फुटमथ कथयन्पक्षतेः कम्पभेदैः,
आख्यातुं वृत्तमेतन्निषधनरपतौ सर्वमेकः प्रतस्थे।
कान्तारे निर्गतासि प्रियसखि! पदवी विस्मृता किन्नु मुग्धे!
मा रोदीरेहि यामेत्युतहृतवचसो निन्युरन्यां वयस्याः ॥

—नैषधीयचरितम् ३।१३२

संस्कृत साहित्य में स्रग्धरा एक बहुत प्रसिद्ध छन्द माना जाता है। अनेक कवियों ने इसका प्रयोग बड़ी सुन्दरता से किया। यद्यपि यह मालिनी और मन्दाक्रान्ता की भाँति अन्तस्तल की मार्मिक भावनाओं को प्रकाशित नहीं

कर सकता है तो भी जहाँ पर ओज गुण को कविता में दर्शाना होगा वहाँ इसी का सहारा लेना पड़ेगा। स्रग्धरा में अधिकतर लम्बे-लम्बे वर्णन किये जाते हैं इसलिये इसमें पुरुषवर्ण और समासबहुला पदावली का होना आवश्यक है। इसीलिये संस्कृत की कोमलकान्तपदावली के रचयिता कालिदास और जयदेव ने इस छन्द का प्रयोग बहुत ही कम किया है। संस्कृत के वीर रस के कवि भट्टनारायण और भवभूति ने इसका अधिक प्रयोग अपने नाटकों में किया है। महाकवि बाण ने अपने 'चण्डीशतक' नामक ग्रन्थ में भगवती चण्डी की स्तुति पूरे सौ श्लोकों में केवल इसी स्रग्धरा छन्द में की है। इस ओजोगुणमयी कविता को पढ़कर आज भी चित्त फड़क उठता है। यहाँ पर केवल एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा।

विद्राणे रुद्रवृन्द्रे सवितरि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रे
जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुति व्यक्तवैरे कुबेरे।
वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुषं पौरुषोपघ्न निघ्नं
निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी॥

(चण्डीशतक ६६)

यद्यपि क्षेमेन्द्र ने यह नहीं लिखा है कि स्रग्धरा लिखने में कौन कवि अत्यन्त निपुण है परन्तु उपर्युक्त उदाहरण को देखते हुए हम यह निःसदेह कह सकते हैं कि महाकवि बाणभट्ट स्रग्धरा लिखने में संस्कृत साहित्य अपना सानी नहीं रखते। 'चण्डीशतक' में लिखे हुए इनके एक एक श्लोक इस कथन के प्रमाण हैं। सुना है आधुनिक कवियों में महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा भी स्रग्धरा लिखने में बेजोड़ थे। उन्होंने 'मारुति-शतक' नामक एक ग्रन्थ भी केवल स्रग्धरा वृत्त में लिखा है परन्तु इस ग्रन्थ के अधिक प्रचार में न होने के कारण हम इसमें से उदाहरण देने असमर्थ हैं।

क्षेमेन्द्र ने स्रग्धरा के गुणदोष विवेचन करते हुए लिखा है कि यदि इस छन्द के आदि भाग में आकार गुरु हो, अन्त में विसर्ग हो तथा विराम असंस्यूत अर्थात् एक में बँधा हुआ हो न कि अलग-अलग हो, तब यह छन्द अधिक सुन्दर लगता है।

आकारगुरुयुक्तादि पर्यन्तान्तविसर्गिणी।
असंस्यूतविरामा च स्रग्धरा राजतेतराम्॥ ३।४१

उपर्युक्त लक्षण से विशिष्ट राजशेखर का यह श्लोक यथा—

ताम्बूलनद्धमुग्धक्रमुकतरुतलप्रस्तरे सानुगाभिः,
पायं पायं कलायी कृतकदलिदलं नारिकेलीफलाम्भः ।
सेव्यन्तां व्योमयात्रा श्रमजलजयिनः सैन्य सीमन्तिनी-
भिर्दात्यूहव्यूहकेलीकलितकुहकुहारावकान्ता बनान्ताः ॥

इसके ठीक विपरीत श्रीचक्र का यह श्लोक देखिये—

सव्यं पातालकुक्षिम्भरि चिरविलसद्दिक्करि प्रीणिताभ्रं
श्रीगर्भश्वभ्रमभ्रंलिहलहरिहरिस्थानमप्येव किंचित् ।
कल्पान्ते व्याप्तविश्वं परिरटति सरिन्नाथ ! पाथस्त्वदीयं
किं त्वेतत्कुम्भयोनेः करकुहरदरीपूरमाचामतोऽभूत् ॥

पुनः क्षेमेन्द्र लिखते हैं कि स्रग्धरा छन्द में आदि और अन्त में आकार के न रहने से जो बन्ध दोष उत्पन्न हो जाता है वह भी पाद के अन्त में विसर्ग के लुप्त न होने से अच्छा लगता है। आपका कथन है—

आद्यन्ताकारविरहाद्बन्धदोषः स्फुटोऽपि यः ।
अविलुप्तैः विसर्गान्तैः स्रग्धरायां समीहते ॥

यथा क्षेमेन्द्र का यह श्लोक—

शौर्यश्रीकेशपाशः करिदलनमिलन्मौक्तिकव्यक्तपुष्पः,
क्षोणीरक्षाभुजङ्गः कुलशिखरिलुठत्कीर्तिनिर्मोकपट्टः ।
शत्रुव्रातप्रतापप्रलयजलधरस्फारधाराकरालः
प्रीत्यै लक्ष्मीकटाक्षः कुवलयविजयी यस्य पाणौ कृपाणः ॥

क्षेमेन्द्र का कथन है कि स्रग्धरा वृत्त का प्रयोग वेग से चलते हुए पवन आदि के वर्णन में अधिक सुन्दर होता है। आप लिखते है कि—

'सावेगपवनादीनां वर्णने स्रग्धरा मता'। ३।२२

सावेगपवन का वर्णन पवनपञ्चाशिका में क्षेमेन्द्र का यथा—

प्रेङ्खच्छङ्खाभिघातस्फुटदखिलचलच्छुक्तिनिर्मुक्तमुक्ता-
मुक्तव्यक्ताट्टहासाः स्मरनृपसकलद्वीपसञ्चारचाराः ।
सर्पत्कर्पूरपूरप्रवणकरचिता दिग्वधूकर्णपूरा
धावन्त्याध्मातविश्वा रतविधुतवधूबन्धवो गन्धवाहाः ॥

अब हम महाकवि श्रीहर्ष का एक अत्यन्त सुन्दर तथा रमणीय पद्य

उदाहरण के रूप में पुनः देकर इस प्रकरण को अब यहीं समाप्त करना चाहते हैं ।

तस्मिन्नेतेन यूना सह विहर पयःकेलिवेलासु बाले !
नालेनास्तु त्वदक्षिप्रतिफलनभिदा तत्र नीलोत्पलानाम् ।
तत्पाथोदेवतानां विशतु तव तनुच्छायमेवाधिकारे
तत्फुल्लाम्भोजराज्ये भवतु च भवदीयाननस्याभिषेकः ॥

—नैषधीयचरित १२।१०३

नोट—यहाँ तक तो हम उन छन्दों के विषय में अत्यन्त विस्तारपूर्वक विवेचन कर आये हैं जो संस्कृत साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। स्थान-स्थान पर हमने प्रसिद्ध छन्दों के एक नहीं अनेक प्रसिद्ध उदाहरण अनेक काव्य ग्रन्थों से दिये हैं। यद्यपि आगे आने वाले छन्द अत्यन्त अप्रसिद्ध हैं परन्तु एक सच्चे टीकाकार के नाते उन पर भी टीका लिखना हमारा धर्म है। परन्तु संक्षेप रूप से ही उनके ऊपर टीका लिखी जा सकती है। इससे आगे आने वाले छन्दों में दण्डक को छोड़कर शायद ही किसी छन्द का प्रयोग संस्कृत साहित्य में हुआ हो।

अथ [२२] आकृतिः

भ्रौ नरना रनावथ गुर्दिगर्कविरमं हि भद्रकमिति ॥ १०५ ॥

भगण-रगण-नगण-रगण-नगण-रगण-नगणैः गुरुणा च भद्रकं नाम वृत्तं भवति। दिग्—दशसु अर्काः—द्वादशसु च यतिः ।

भावार्थ—जिस छन्द में भगण, रगण, रगण, नगण, रगण, नगण और अन्त में एक गुरु हो उसे **भद्रक** नामक वृत्त कहते हैं। दिशा—दश और अर्क—बारह इन अक्षरों के बाद इसमें विराम होता है।

उदाहरण—

भ. र. न. र. न. र. न. गु.

S I I S I S I I I S I S I I I S I S I I I S

भद्रकगीतिभिः सकृदपि स्तुवन्ति भवये भवन्तमनघं
भक्तिभरावनम्रशिरसः प्रणम्य तव पादयोः सुकृतिनः ।
ते परमेश्वरस्य पदवीमवाप्य सुखमाप्नुवन्ति विपुलं
मर्त्यभुवं स्पृशन्ति न पुनर्मनोहरसुराङ्गनापरिवृताः ॥

—छन्दोवृत्ति

अथ [२३] विकृतिः

यदिह नजौ भजौ भ्जभलगास्तदश्वललितं हरार्कयतिमत् ॥ १०६ ॥

नगण-जगण-भगण-जगण-भगण-जगण-भगणैः लघु-गुरुभ्यां च अश्वललितं नाम वृत्तं भवति । हराः—एकादश, अर्काः—द्वादश इति यति नियमः ।

भावार्थ—जिस छन्द में नगण, जगण, भगण, जगण, भगण जगण, भगण और अन्त में लघु, गुरु हों, उसे **अश्वललित** नामक वृत्त कहते हैं । इसमें ग्यारह और बारह अक्षरों के बाद विराम होता है ।

उदाहरण—

न. ज. भ. ज. भ. ज. भ. ल. गु.

। । । । ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ । । । ऽ

पवनविधूतवीचिचपलं विलोकयति जीवितं तनुभृतां
वपुरपि ह्रयमानमनिशं जरावनितया वशीकृतमिदम् ।
सपदिनिपीडनव्यतिकरं यमादिव नराधिपान्नरपशोः,
परवनितामवेक्ष्य कुरुते तथापि हृतबुद्धिरश्वललितम् ॥

—छन्दोवृत्ति

मत्ताक्रीडा मौ त्नौ नौ नल्गिति भवति वसुशरदशयतियुता ॥ १०७ ॥

वसवः—अष्टौ, शराः—पञ्च, दश च तेषु यतियती मत्ताक्रीडा नाम वृत्तं भवति ।

भावार्थ—जिस छन्द में दो मगण, तगण, चार नगण और अन्त में लघु, गुरु हों, उसे **मत्ताक्रीड़ा** नामक वृत्त कहते हैं । इसमें वसु—आठ, शर—पाँच और दस अक्षरों के बाद विराम होता है ।

उदाहरण—

म. म. त. न. न. न. न. ल. गु.

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । । । । । । । । । । । ऽ

हृद्यं मद्यं पीत्वा नारी स्खलितगतिरतिशयरसिकहृदया
मत्ताक्रीडा लोलैरङ्गैर्मुदमखिलविटजनमनसि कुरुते ।
वीतव्रीडाऽश्लीलालापैः श्रवणसुखसुभगसुललितवचना
नृत्यैर्गीतैर्भ्रूविक्षेपैः कलिमणितविविधविहगकुलरुतैः ॥

—छन्दोवृत्ति

१ वृत्त०

अथ [२४] सङ्कृतिः

भूतमुनीनैर्यतिरिह भतनाः स्भौ भनयाश्च यदि भवति तन्वी ॥ १०८ ॥

भूतानि—पञ्च, मुनयः—सप्त, इनाः सूर्याः—द्वादश चेति यतिनियमः ।

भावार्थ—जिस छन्द में भगण, तगण, नगण, सगण, दो भगण, नगण और अन्त में यगण हो, उसे **तन्वी** नामक वृत्त कहते हैं। इसमें भूत—पाँच मुनि—सात और इन अर्थात् सूर्य—बारह इन अक्षरों के बाद विराम होता है।

उदाहरण— भ. त. न. स. भ. भ. न. य.

S I I S S I I I I I I S S I I S I I I I I I S S

माधवमुग्धैर्मधुकरविरुतः कोकिलकूजितमलयसमीरैः

कम्पमुपेता मलयजसलिलैः प्लावनतोऽप्यविगततनुदाहा ।

पद्मपलाशैर्विरचितशयना देहजसंज्वरभरपरिदूनैः

निःश्वसती सा मुहुरतिपरुषं ध्यानलये तव निवसति तन्वी ॥

—छन्दोमञ्जरी

अथ [२५] अतिकृतिः

क्रौञ्चपदा भ्मौ स्भौ ननना न्गाविषुशरवसुमुनि विरतिरिह भवेत् ॥ १०९ ॥

इषवः—पञ्च, शराः—पञ्च, वसवः—अष्टौ, मुनयः—सप्त । एतेषु विरतिर्यस्याः सा क्रौञ्चपदा नाम वृत्तं भवति ।

भावार्थ—जिस छन्द में भगण, मगण, सगण, भगण, चार नगण और अन्त में एक गुरु हों, उसे **क्रौञ्चपदा** नामक वृत्त कहते हैं। इसमें इषु—पाँच, शर—पाँच, वसु—आठ और मुनि—सात इन अक्षरों के बाद विराम होता है।

उदाहरण—

भ. म. स. भ. न. न. न. न. गु.

S I I S S S I I S S I I I I I I I I I I I I I I S

या कपिलाक्षी पिङ्गलकेशी कलिरुचिरनुदिनमनुनयकठिना

दीर्घतराभिः स्थुलशिराभिः परिवृतवपुरतिशयकुटिलगतिः ।

आयतजङ्घा निम्नकपोला लघुतरकुचयुगपरिचितहृदया,

सा परिहार्या क्रौञ्चपदा स्त्री ध्रुवमिह निरवधि सुखमभिलषता ॥

—छन्दोवृत्ति

अथ [२६] उत्कृतिः

वस्वीशाश्वच्छेदोपेतं ममतनयुगनरसलगैर्भुजङ्गविजृम्भितम् ॥ ११० ॥

वसवः–अष्ठौ, ईशाः–एकादश, अश्वाः–सप्त एतैश्छेदेन यत्यायुक्तं भुजङ्ग-विजृम्भितं नाम वृतं भवति ।

भावार्थ—जिस छन्द में दो मगण, तगण, तीन नगण, रगण, सगण और लघु गुरु होता है उसे **भुजङ्गविजृम्भित** छन्द कहते हैं । इसमें आठ, ग्यारह और सात अक्षरों के बाद यति होती है ।

उदाहरण—म. म. त. न. न. न. र. स. ल. गु.

S S S S S S S S I I I I I I I I I I I S I S I I S I S

हेलोदश्चन्यश्चत्पादप्रकटवकटनटनभरोरणत्करतालकः

चारुप्रेङ्खच्चूडावर्हः श्रुतितरलनवकिसलयस्तरङ्गितहारधृत् ।

त्रस्यन्नागस्त्रीभिर्भक्त्या मुकुलितकरकमलयुगं कृतस्तुतिरच्युतः

पायाद्वश्छिन्दन्कालिन्दीह्रदकृतनिजवसतिबृहद्भुजङ्गविजृम्भितम् ॥

मो नाः षट् सगगिति यदि नवरसरसशरयतियुतमपवाहाख्यम् ॥ १११ ॥

मो मगणः, षट् नाः-नगणाः, सगणः गो-गुरुः पुन गुरुश्च नवभिः, षड्भिः, पुनः षड्भिः पञ्चभिश्च यत्या युतं अपवाहकं नाम वृत्तं भवति ।

भावार्थ—जिस छन्द में एक मगण, छः नगण, एक सगण तथा अन्त में दो गुरु हों, उसे **अपवाहक** नामक वृत्त कहते हैं । इयमें नव, रस–छः, पुनः छः, तथा शर–पाँच इन अक्षरों के बाद विराम होता है ।

उदाहरण— म. न. न. न. न. न. न. स. गु. गु.

S S S I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I S S S

श्रीकण्ठं त्रिपुरदहनममृतकिरणशकललितशिरसं रुद्रं

भूतेशं हतमुनिमखमखिलभुवननमितचरणयुग्ममीशानम् ।

सर्वज्ञं वृषभगमनमहिपतिकृतवलयरुचिरकरमाराध्यं,

तं वन्दे भवभयभिदमभिमतफलवितरणगुरुमुमया युक्तम् ॥

नोट—अब तक जिन छन्दों का वर्णन किया गया है वे ऐसे थे जिनके प्रत्येक पाद की अक्षर संख्या नियमित थी । परन्तु अब हम ऐसे छन्दों का वर्णन करेंगे जिनके पादों की अक्षर संख्या अनियमित होती है । ऐसे छन्दों को दण्डक कहते हैं । यह ध्यान में रखना चाहिये कि दण्डक छन्द के एक पाद की

अक्षर संख्या २६ से सदा अधिक होती है। इससे कम नहीं हो सकती। दण्डक छन्दों के भेद अनेक होते हैं जिनमें सुराम, वैकुण्ठ, कासार नीहार, केदार, गोविन्द और सन्दोह आदि प्रसिद्ध हैं। दण्डक का एक पाद कितना बड़ा हो हो सकता है इसकी न तो कोई सीमा है और न कोई नियम। एक कवि ने तो यहाँ तक कह डाला है कि—

एकोनसहस्राक्षरपर्यन्ता दण्डकाङ्घ्रयः प्रोक्ताः।
वर्णत्रिकगणवृद्धया न द्वितयाद्या महामतिभिः॥

दण्डक छन्द का संस्कृत में प्रयोग तथा प्रचार बहुत कम है। हाँ कुछ मनचले कवियों ने इसका प्रयोग अवश्य किया है परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। दण्डक छन्द की सबसे बड़ी विशेषता यही है इसके पादाक्षरों की संख्या अनियमित है।

यदिह नयुगलं ततः सप्तरेफास्तदा चण्डवृष्टिप्रपातो भवेद्दण्डकः॥ ११२॥

नयुगलं नगणद्वयं ततस्तदनन्तरं सप्त रगणाः, स चण्डवृष्टिप्रपातो नाम दण्डकः भवति।

भावार्थ—जिस छन्द में दो नगण तथा उसके बाद सात रगण हों, उसे **चण्डवृष्टिप्रपात** नामक दण्डक वृत्त कहते हैं इस छन्द का उदाहरण उपर्युक्त यही लक्षण है।

उदाहरण—

न. न. र. र. र. र. र. र. र.

। । । । । । ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ

यदिह नयुगलं ततः सप्तरेफास्तदा चण्डवृष्टिप्रपातो भवेद्दण्डकः।

प्रतिचरणविवृद्धरेफाः स्युरर्णार्णवव्यालजीमूत-
लीलाकरोद्दामशङ्खादयः॥ ११३॥

प्रतिचरणं विवृद्धो रेफो रगणः येषु ते तथेति व्युत्पत्त्या प्रथमे पादे नौ—नगणद्वयं ततोऽष्टौ रेफाः, द्वितीये नव, तृतीये दश, चतुर्थे एकादशेति वृद्धिरित्यर्थः।

भावार्थ—दण्डक छन्द के प्रत्येक चरण में दो नगण के बाद एक एक रगण की वृद्धि होनी चाहिये। इस प्रकार से अनेक प्रकार के दण्डक छन्द बनते चले जायेंगे। जिस दण्डक में दो नगण और आठ रगण हो उसे अर्णाख्य, जिसमें दो नगण और नव रगण हो उसे अर्णवः, जिसमें दो नगण और दश रगण हों, उसे

व्याल, जिसमें ११ रगण हों उसे जीमूत, १२ हो उसे लीलाकरः, १३ हों उसे उद्दाम और १४ हो उसे शंख कहते हैं। यह विषय निम्नांकित प्रकार से और अधिक स्पष्ट हो जायेगा।

(१)	दो	नगण	+ आठ	रगण = अर्णाख्य	दण्डक
(२)	,,	,,	+ नौ	रगण = अर्णव	,,
(३)	,,	,,	+ दस	रगण = व्याल	,,
(४)	,,	,,	+ ग्यारह	रगण = जीमूत	,,
(५)	,,	,,	+ बारह	रगण = लीलाकर	,,
(६)	,,	,,	+ तेरह	रगण = उद्दाम	,,
(७)	,,	,,	+ चौदह	रगण = शङ्ख	,,

उदाहरण—

त्रिभुवन सुखहेतवे धातृमुख्यामरप्रार्थनासार्थनादर्थिचिन्तामणे !
दशरथकृतयागसौभाग्यतस्तत्तनूजन्मतास्थापितश्रौतमार्गार्गल !
मुनिवनगतताटकाकण्टकीभूलकुद्दालितस्वीयबाणावले ! राघव !
कुशिकयजनसिद्धये व्योम कृत्वा शरैश्चण्डवृष्टिप्रतापोऽसि हन्तुं रिपून् ॥

प्रचितकसमभिधो धीरधीभिः स्मृतो दण्डको नद्वयादुत्तरैः सप्तभिर्यैः ॥११४॥

नगणद्वयादुत्तरभाविभिः सप्तभिर्यगणैः धीरबुद्धिभिः कविभिः प्रचितक-संज्ञको दण्डक उक्तः। अत्रापि पूर्ववत् एकैकयगणवृद्धया दण्डकाः कार्याः।

भावार्थ—जिस दण्डक में दो नगण के बाद सात यगण का प्रयोग किया जाता है उसे **प्रचितकदण्डक** नामक छन्द कहते हैं इसमें भी पहिले की भाँति प्रत्येक चरण में एक एक यगण बढ़ा करके अनेक दण्डक बनाये जा सकते हैं। प्रत्येक दण्डक के पादान्त में विराम होता है। दूसरे प्रकार के दण्डक का एक और उदाहरण देकर हम इस अध्याय को अब यहीं समाप्त करना चाहते हैं।

उदाहरण—

प्रथम कथित दण्डकश्चण्ड वृष्टिप्रपाताभिधानो मुनेः पिङ्गलाचार्यनाम्नो मतः,
प्रचित इति ततः परं दण्डकानामियं जातिरेकैकरेफाभिवृद्धया यथेष्टं भवेत्।
स्वरुचिरचित संज्ञया तद्विशेषैरशेषैः पुनः काममन्येऽपि कुर्वन्तु वागीश्वराः,
भवति यदि समानसंख्याक्षरैस्तत्र पादव्यवस्था ततो दण्डकः पूज्यतेऽसौ जनैः॥

इति तृतीयोऽध्यायः॥

चतुर्थोऽध्यायः

(अर्धसमवृत्तप्रकरणम्)

विषमे यदि सौ सलगा दले भौ युजि भाद् गुरुकावुपचित्रम् ॥ १ ॥

तृतीयाध्याये समवृत्तान्यभिधाय साम्प्रतमर्धसमवृत्तानि वर्णयति श्रीकेदारभट्टः। यदि विषमे दले प्रथमे पादे सौ सगणद्वयं सलगाः—सगण-लघु-गुरवश्च सन्ति युजि द्वितीये पादे भौ भगणद्वयं तदनन्तरं भगणः तस्मात् भात् भगणात् परौ गुरुकौ गुरुद्वयं स्यात् तदा उपचित्रा नाम छन्दः। अर्धसमवृत्तत्वात्तत्र प्रथमपादवत् तृतीयः, द्वितीय पादवच्च चतुर्थः इति स्फुटमवसेयम्।

भावार्थ—तीसरे अध्याय में समवृत्तों का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। अतः क्रमप्राप्त होने से इस चौथे अध्याय में अर्धसमवृत्तों का वर्णन किया जाता है। यदि विषम (प्रथम तथा तृतीय) पाद में तीन सगण (।।ऽ) तथा लघु-गुरु हों तथा युग्म (द्वितीय तथा चतुर्थ) पाद में तीन भगण (ऽ।।) तथा दो गुरु हों, तो इसे **उपचित्रा** कहते हैं। अर्धसमवृत्तों में प्रथम के समान तीसरा तथा दूसरे के तरह चौथा पाद होता है। अतः ऊपर का लक्षण तृतीय तथा चतुर्थ पाद के लिए भी जानना चाहिए।

उदाहरण—

स. स. स. ल. गु. भ. भ. भ. गु. गु.

।।ऽ।।ऽ।।ऽ।ऽ ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽऽ

मुरवैरिवपुस्तनुतां मुदं हेमनिभांशुकचन्दनलिप्तम्।
गगनचपलामिलितं यथा, शारदनीरधरैरुपचित्रम् ॥

यहाँ प्रथम तथा तृतीय चरणों का लक्षण तथा द्वितीय चतुर्थ का एक समान हैं अतः इस अर्धसमवृत्त को उपचित्रा कहेंगे।

भत्रयमोजगतं गुरुणी चेत् युजि च नजौ ज्ययुतौ द्रुतमध्या ॥ २ ॥

ओजगतं विषमपादगतं भत्रयं त्रयो भगणाः, गुरुणी गुरुद्वयं चेत् युजि समपादयोः ज्ययुतौ जगण-यगणाभ्यां युतौ अन्ते सहितौ नजौ नगण-जगणौ चेत् तदा द्रुतमध्या नाम वृत्तम्।

भावार्थ—यदि विषमपाद में तीन भगण तथा दो गुरु वर्ण हों तथा समपाद में नगण, जगण, जगण तथा यगण हों, अर्थात् विषम में ११ वर्ण तथा सम में १२ वर्ण हों, तो इसे **'द्रुतमध्या'** नामक छन्द कहते हैं।

उदाहरण—

भ. भ. भ. गु. गु. न. ज. ज. य.

S I I S I I S I I S S I I I I S I I S I I S S

यद्यपि शीघ्रगतिर्मृदुगामी, बहुधनवानपि दुःखमुपैति

नातिशया चरिता न च मृद्वी, नृपतिगतिः कथिता द्रुतमध्या ॥

सयुगात् सगुरू विषमे चेत् भाविह वेगवती युजि भाद् गौ ॥ ३ ॥

विषमे सयुगात् सगणद्वयात् सगुरू सगणो गुरुश्च भवतः। अर्थात् आदौ, सगणत्रयम्, अन्ते गुरुरेकः। युजि समे भौ भगणौ ततः भाद् भगणात् गौ गुरुद्वयम् इत्थमादौ भगणत्रयमन्ते द्वौ गुरू भवतः चेत् इह शास्त्रे वेगवती नाम।

भावार्थ—विषमपाद में तीन सगण एक गुरु (१० वर्ण) तथा समपाद में तीन भगण तथा दो गुरु (११ वर्ण) हों तो यह **वेगवती** वृत कहलाता है।

उदाहरण—

स. स. स. गु. भ. भ. भ. गु. गु.

I I S I I S I I S S S I I S I I S I I S S

स्मरवेगवती व्रजरामा, केशववंशरवैरतिमुग्धा।

रभसान्नगुरून् गणयन्ती, केलिनिकुञ्जगृहाय जगाम ॥

ओजे तपरौ जरौ गुरुश्चेन् म्सौ ज्गौ ग् भद्रविराड् भवेदनोजे ॥ ४ ॥

ओजे विषमे तपरौ तगणात् परौ जरौ जगण-रगणौ गुरुश्च, अनोजे अविषमे अर्थात् समे पादे म्सौ मगण-सगणौ ज्गौ जगणः गुरुद्वयं च भवेत्, तदा भद्रविराड् नाम वृत्तम्।

भावार्थ—विषमदल में तगण, जगण, रगण तथा एक गुरु (१० वर्ण) हों तथा समदल में मगण, सगण, जगण तथा दो गुरु (११ वर्ण) हों, तो इसे **भद्रविराट्** छन्द कहते हैं।

उदाहरण—

त. ज. र. गु. म. स. ज. गु. गु.

S S I I S I S I S S S S I I S I S I S S

यत्पादतले चकास्ति चक्रं, हस्ते वा कुलिशं सरोरुहं वा।
राजा जगदेकचक्रवर्ती, स्याच्छं भद्रविराट् समश्नुतेऽसौ ॥

असमे सजौ सगुरुयुक्तौ केतुमती समे भरनगाद्गः ॥ ५ ॥

असमे विषमे पादे सजौ सगण-जगणौ सगुरुयुक्तौ सगणेन एकेन गुरुणा च युक्तौ भवतः, समे भरनगाद् भगण-रगण-नगण-गुरुभ्योऽनन्तरं गः गुरुः भवति तदा केतुमती नाम वृत्तम्।

भावार्थ—यदि विषमपाद में सगण, जगण, सगण, गुरु (१० वर्ण) तथा समपाद में भगण, रगण, नगण, दो गुरु (११ वर्ण) हों, तो यह **केतुमती** नामक वृत्त होता है।

उदाहरण—

स. ज. स. गु. भ. र. न. गु. गु.

I I S I S I I I S S S I I S I S I I I S S

हतभूरिभूमिपतिचिह्नां, युद्धसहस्रलब्धजयलक्ष्मीम्।
सहते न कोऽपि वसुधायां, केतुमतीं नरेन्द्र ! तव सेनाम् ॥

आख्यानकी तौ जगुरु ग ओजे जतावनोजे जगुरू गुरुश्च ॥ ६ ॥

ओजे विषमे तौ तगणद्वयं जगुरू गः जगणः गुरुद्वयं; अनोजे समे जतौ जगण-तगणौ जगुरू जगणः गुरुः अनन्तरमेको गुरुः च, तदेयं आख्यानकी नाम।

भावार्थ—यदि विषमपाद में दो तगण, दो गुरु हों तथा समपाद में जगण तगण जगण दो गुरु हों तो उसे आख्यानकी छन्द कहते हैं। यदि प्रथम तृतीय पादों में इन्द्रवज्रा तथा द्वितीय, चतुर्थ पादों में उपेन्द्रवज्रा हो तो यह **आख्यानकी** कहलाता है। इस प्रकार यह उपजाति का ही भेद है, परन्तु विशेष संज्ञा के लिए इसका अर्धसमवृत्त के प्रकरण में उल्लेख है।

उदाहरण— त. त. ज. गु. गु. ज. त. ज. गु. गु.

S S I S S I I S I S S I S I S S I I S I S S

भृङ्गावलीमङ्गलगीतनादोऽर्जुनस्य चित्ते मुदमादधाति ।
आख्यानकी च स्मरजन्मपाश-महोत्सवस्याश्रवणे क्वणन्ती ॥

जतौ जगौ गो विषमे समे चेत् तौ ज्गौ ग एषा विपरीतपूर्वा ॥ ७ ॥

विषमे जगण-तगण-जगण-गुरुद्वयं समे च तगणद्वयं जगणः गुरुद्वयं च भवति एषा विपरीतपूर्वा विपरीतशब्दपूर्वा आख्यानकी भवति । विपरीताख्यानकीति यावत् ।

भावार्थ—विषम पाद में ज, त, ज तथा दो गुरु, सम पाद में त, त, ज दो गुरु हों तो इसे **विपरीताख्यानकी** कहते हैं । आख्यानकी को उलट देने पर यह वृत्त तैयार होता है अर्थात् प्रथम तृतीय पादों में उपेन्द्रवज्रा तथा द्वितीय चतुर्थ पाद में इन्द्रवज्रा हो—इस प्रकार दोनों के मिश्रण को **विपरीताख्यानकी** करते हैं ।

उदाहरण— ज. त. ज. गु. गु. त. त. ज. गु. गु.

I S I S S I I S I S S S S I S S I I S I S S

अलं तवालीकवचोभिरेभिः स्वार्थं प्रिये साधय कार्यमन्यत् ।
कथं कथावर्णनकौतुकं स्यादाख्यानकी चेद्विपरीतवृत्तिः ॥

सयुगात् सलघू विषमे गुरुर्युजि नभौ भरकौ हरिणप्लुता ॥ ८ ॥

विषमे पादे सयुगात् सगणद्वयात् सलघू सगणो लघुः गुरुश्च, युजि समे नभौ नगणो भगणो, भरकौ भगणो रगणश्च भवन्ति तदा हरिणप्लुता नाम वृत्तम् । 'भरकौ' इत्यत्र स्वार्थे क प्रत्ययः ।

भावार्थ—यदि विषमपाद में तीन सगण लघु गुरु (११ वर्ण) तथा समपाद में नगण, दो भगण तथा रगण (१२ वर्ण) हो तो इसे **हरिणप्लुता** वृत्त कहते हैं ।

उदाहरण— स. स. स. ल. गु. न. भ. भ. र.

I I S I I S I I S I S I I I S I I S I I S I S

स्फुटफेनचया हरिणप्लुता बलिमनोज्ञतटा तरणेः सुता ।
कलहंसकुलारवशालिनी विहरतो हरति स्म हरेर्मनः ॥

अयुजि ननरला गुरुः समे न्जमपरवक्त्रमिदं ततो जरौ ॥ ९ ॥

अयुजि विषमे पादे न-न-र-ल-गुरवः, समे पादे न-ज-ज-रगणाश्च तदा अपरवक्त्रं नाम वृत्तम् ।

भावार्थ—विषम पाद में न, न, र, लघु, गुरु (११ वर्ण) तथा सम पाद में न, ज, ज, र (१२ वर्ण) हों तो इस **अपरवक्त्र** छन्द कहते हैं । वैतालीय के अन्तर्गत होने पर भी नवीन संज्ञा करने के लिए इसका यहाँ उल्लेख किया है ।

उदाहरण—

न. न. र. ल. गु. न. ज. ज. र.

। । । । । । S । S । S । । । । S । । S । S । S

स्फुटसुमधुरवेणुगीतिभिस्तवपरवक्त्रमवेत्य माधवम् ।
मृगयुवतिगणैः समं स्थिता व्रजवनिता धृतचित्तविभ्रमाः ॥

अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥ १० ॥

अयुजि विषमे नगणद्वयं रगण-यगणौ, युजि समे पादे नजौ नगण-जगणौ जरगाः जगण-रगणौ गुरुश्च भवन्ति तदेयं पुष्पिताग्रा नाम ।

भावार्थ—विषमपाद में दो नगण, रगण तथा यगण (१२ वर्ण) होते हैं तथा सम पाद में नगण, दो जगण, रगण तथा गुरु (१३ वर्ण) होते हैं तो इस छन्द का **पुष्पिताग्रा** नाम है ।

उदाहरण—

न. न. र. य. न. ज. ज. र. गु.

। । । । । । S । S । S S । । । । S । । S । S । S S

कथमपि विरहः पुरा न सेहे नयन निमीलनखिन्नया ययाते ।
श्वसिति कथमसौ रसालशाखां चिरविरहेण विलोक्य पुष्पिताग्राम् ॥

—गीतगोविन्द

वदन्त्यपरवक्त्राख्यं वैतालीयं विपश्चितः
पुष्पिताग्राभिधं केचिदौपच्छन्दसिकं तथा ॥ ११ ॥

विपश्चितो विद्वांसः अपरवक्त्राख्यं वृत्तं लक्षितं वैतालीयं वदन्ति । तथा केचिदन्ये, पण्डिताः पुष्पिताग्राभिधं साम्प्रतमेव लक्षितं औपच्छन्दसिकं वदन्ति ।

भावार्थ—विद्वान् लोग अपरवक्त्र छन्द को वैतालीय तथा पुष्पिताग्रा को औपच्छन्दसिक कहते हैं।

स्यादयुग्मके रजौ रयौ समे चेत् जरौ जरौ गुरुर्यवात्परा मतीयम् ॥ १२ ॥

अयुग्मके विषमे पादे रजौ रयौ र-ज-र-यगणाः, समे जरौ जरौ गुरुः ज-र-ज-र-गुरवो भवन्ति तदा इयं यवात् यवशब्दात् परा मती अर्थात् यवमती नाम वृत्तं भवति।

भावार्थ—विषम पाद में रगण, जगण, रगण तथा यगण (१२ वर्ण) हों तथा सम पाद में जगण, रगण, जगण, रगण तथा अन्त में एक गुरु (१३ वर्ण) हों, तो इस छन्द **यवमती** नाम से पुकारते हैं।

उदाहरण—

र. ज. र. य. ज. र. ज. र. गु.

S I S I S I S I S I S S I S I S I S I S I S I S S

कामकोटिपीठवासिनी मदीये हृदम्बुजेऽम्बुजक्षणा चिरं वसन्ती।
दुःखजालमाशु मूलतो निहत्य स्वकीयपादपङ्कजे रतिं ददातु ॥

पञ्चमोऽध्यायः

(विषमवृत्तप्रकरणम्)

(पदचतुरूर्ध्वम्)

मुखपादोऽष्टभिर्वर्णैः
परे स्युर्मकरालयैः क्रमाद् वृद्धैः ।
सततं यस्य विचित्रैः पादैः सम्पन्नसौन्दर्यं
तदुदितममलमतिभिः पदचतुरूर्ध्वाभिधं वृत्तम् ॥ १ ॥

यस्य वृत्तस्य मुखपादः प्रथमश्चरणः अष्टभिः वर्णैः भवतीति शेषः तथा परे द्वितीयादिपादाः क्रमाद् वृद्धैः मकरालयैः समुद्रैः चतुर्भिरक्षरैरित्यर्थः युक्ताः सततं नैरन्तर्येण स्युः भवेयुः, विचित्रैः पादैः सम्पन्नसौन्दर्यं सञ्जातशोभं तद् वृत्तं अमलमतिभिः निर्मलप्रतिभैः पिङ्गलादिभिराचार्यैः पदचतुरूर्ध्वाभिधं पदचतुरूर्ध्वमिति नाम्ना कथितम् । इत्थं प्रथमे पादे अष्टावक्षराणि, द्वितीये द्वादश, तृतीये षोडश, चतुर्थे विंशतिः इति फलितोऽर्थः ।

भावार्थ—अर्धसम के अनन्तर विषमवृत्तों का प्रकरण आता है । विषमवृत्त के चारों चरण भिन्न-भिन्न अक्षरों के होते हैं—चारों अनमेल होते हैं । इस प्रकरण के सबसे पहले वृत्त का नाम है—**पदचतुरूर्ध्व** ! इसके प्रथम पाद में ८ वर्ण होते हैं तथा अन्य पादों में क्रम से चार चार अक्षर अधिक होते हैं । इस प्रकार इस वृत्त के प्रथम चरण में ८ वर्ण, द्वितीय में १२, तृतीय में १६, चतुर्थ में २० वर्ण होते हैं । यह वृत्त विचित्र पादों से सुशोभित रहता है । इसका आशय यह है कि इसमें लघु तथा गुरु के निवेश का नियम नहीं है परन्तु पादों को सुश्राव्य होना चाहिए कहीं खटकना न चाहिए ।

(आपीडम्)

प्रथममुदितवृते
विरचितविषमचरणभाजि ।
गुरुकयुगलनिधन इह सहित आङा
लघुविरचितपदविततियतिरिति भवति पीडः ॥ २ ॥

विरचितविषमचरणभाजि विरचितविषमाक्षरान् चरणान् भजतीत्येवं भूते प्रथमं मुदितवृत्ते प्रथमं प्रतिपादिते पदचतुरुर्ध्वाभिधे वृत्ते गुरुकयुगल-निधने गुरुद्वयं निधने अन्ते यस्य तस्मिन् अन्ते गुरुयुग्मयुते सति लघुविरचित-पदविततियतिः लघुपदरचनया यतिः यस्मिन् तथाभूतः आङा सहितः पीडः आपीड इति भावः। आपीडं नाम वृत्तं भवतीति। अस्य वृत्तस्यान्ते गुरुद्वयस्य विद्यमानत्वात् आद्याक्षराणां लघुत्वं भवती बोध्यम्। नियमाभावात् श्रुति-सुखकरी स्वेच्छया यतिः कार्या।

भावार्थ—विषमाक्षरपादों को धारण करने वाले पूर्वोक्त पदचतुरूर्ध्वं वृत्त में यदि अन्त में दो गुरु अक्षर हों तथा लघु पदों के न्यास में जहाँ यति की गई हो तो इसे आङ् सहित पीड अर्थात् **आपीड** वृत्त कहते हैं। आशय यह है कि इसके अन्तिम दो अक्षर गुरु होंगे तथा शेष आदि के अक्षर लघु। इस प्रकार प्रथम पाद में ६ अक्षर लघु होंगे अन्तिम २ गुरु, द्वितीय में १० अक्षर लघु अन्तिम २ गुरु, तृतीय में आदिम १४ लघु अन्तिम २ गुरु तथा चतुर्थ में आदिम १८ लघु अन्तिम २ गुरु। इसमें भी यति का नियम नहीं है।

उदाहरण—

कुसुमित सहकारे (८)
हतहिम महिम शुचिशशाङ्के (१२)
विकसितकमलसरसि मधुसमयेऽस्मिन् (१६)
प्रवससि पथिकहतक ! यदि भवति तव विपत्तिः॥ (२०)

(कलिका)

प्रथममितरचरणसमुत्थं
श्रयति स यदि लक्ष्म।
इतरदितर गदितमपि यदि च तुर्यं
चरण युगलमविकृतमपरमिति कलिका सा॥ ३॥

श्लोकस्य चतुर्थांशस्तुर्यशब्दे नोच्यते। यदि प्रथमं तुर्यं प्रथमः पादः इतर चरण समुत्थं द्वितीयपादोद्भवं लक्ष्म लक्षणं श्रयति भजते तथा यदि इतरद् द्वितीयोऽपि पादः इतर गदितं प्रथमचरणप्रतिपादितं लक्ष्म भजते। अपरं चरण-युगलं तृतीयचतुर्थपादयोः युग्मं अविकृतं तिष्ठति विकारमभजमानमेव आपीडवद् भवति सा कलिकेति नाम्ना प्रसिद्धं वृत्तं भवति।

अत्र प्रथमः पादः द्वादशाक्षरः द्वितीयपादः अष्टाक्षरः तृतीयचतुर्थं पादौ आपीडवद् क्रमेण षोडश-विंशत्यक्षरात्मौ भवतः इति फलितार्थः ।

भावार्थ—यदि आपीड वृत्त का प्रथम पाद दूसरे पाद का लक्षण (अर्थात् १२ अक्षर) धारण करे तथा दूसरा पाद प्रथम पाद की भाँति (८ अक्षर) हो तथा अन्य पाद अविकृत रूप से ज्यों के त्यों रहें (तीसरा १६ अक्षरों तथा चौथा २० अक्षरों का हो) तो इसे **कालिका** वृत्त कहते हैं। आशय है कि आपीड के प्रथम तथा द्वितीय पादों के विपर्यय कर देने पर कलिका छन्द बन जाता है।

(लवली)

द्विगुरुयुत सकल चरणान्ता
मुखचरणगतमनुभवति च तृतीयः ।
अपरमित हि लक्ष्म
प्रकृतमखिलमपि यदिदमनुभवति सा लवली ॥ ४ ॥

यदा तृतीयः चरणः मुखचरणगतं प्रथमपादस्थितं लक्ष्म अनुभवति आश्रयति। अपरं अखिलमपि पादत्रयं प्रकृतं आपीडस्थितं लक्ष्म लक्षणं अनुभवति तदा लवली नाम वृत्तम्। प्रथमे १२ अक्षराणि, द्वितीये १६, तृतीये ८ चतुर्थे २० वर्णा इति संक्षिप्तार्थः। द्विगुरुयुतेति पदं सकल चरणानामन्ते गुरुयुग्मयुतत्वं वदता श्रीभट्टकेदारेण सामान्य लक्षणस्यैवानुवादो विहित इति वेदितव्यम् ।

भावार्थ—यदि तृतीय पाद प्रथम पाद का लक्षण धारण करे अर्थात् आठ अक्षर का हो तथा अन्य तीनों पाद अविकृत रूप से आपीड के समान रहें अर्थात् प्रथम १२, द्वितीय १६ तथा चतुर्थ २० अक्षरों का हो तो इसे **लवली** छन्द कहते हैं। आपीड के समान होने से इस छन्द के प्रत्येक चरण के अन्त में दो दो गुरु अवश्य रहते हैं।

(अमृतधारा)

प्रथममधिवसति यदि तुर्यं
चरमचरणपदमवसितगुरुयुग्मम् ।
निखिलमपरमुपरिगतमिति ललितपदयुक्ता
तदिदममृतधारा ॥ ५ ॥

यदि प्रथमं तुर्यं प्रथमश्चरणः अवसितगुरुयुग्मं अन्तस्थितगुरुद्वयेन समन्वितं सत् चरमचरणपदं चरम चरणस्य चतुर्थपादस्य पदं स्थानं अधिवसति धारयति अर्थात् चतुर्थश्चरणो भवतीत्यर्थः। निखिलं अपरं पादत्रयं उपरिगतं आपीडवद् विद्यमानं स्यात् तदा इदं वृत्तं **अमृतधारा** इति नाम। ललितपद-युक्तेति प्रशंसा वचनं न तु स्वरूपकथनम्। तथा चास्मिन् वृत्ते पादक्रमेण द्वादश-षोडश-विंशत्यष्टाक्षराणि च भवन्तीति संक्षेपः।

भावार्थ—यदि प्रथम चरण चतुर्थ पाद के स्थान तथा अन्य सब तीनों पाद आपीडवत् हों तो इसे **अमृतधारा** वृत्त कहते हैं। अर्थात् प्रथम पाद में बारह अक्षर, दूसरे में सोलह, तीसरे में बीस तथा चौथे चरण में आठ अक्षर होते हैं। आपीड की तरह इसके प्रत्येक चरण के अन्त में दो अक्षर गुरु होते हैं। ललित-पदयुक्ता पादपूर्ति के लिए प्रयुक्त किया गया है। स्वरूप कथन में इसकी आवश्यकता नहीं।

(उद्‌गता)

सजादिमे सलघुकौ च
नसजगुरुकैरथोद्‌गता।
त्र्यङ्घ्रिगतभनजला गयुताः
सजसा जगौ चरमनेकतः पठेत्॥ ६॥

अथ उद्‌गता नामानं विषमवृत्तं लक्षयति। आदिमे प्रथमे पादे सजं सगण-जगणौ सलघुकौ सगणो लघुश्च भवति। द्वितीयपादो नसजगुरुकैः नगण-सगण-जगणगुरुभिः युक्तो भवति। त्र्यङ्घ्रिगतभनजलाः। अत्र त्रिशब्दस्तृतीयार्थे वर्तते ततः त्रिश्चासौ अङ्घ्रिश्चेति त्र्यङ्घ्रि तृतीयचरणः। तत्र गता विद्यमाना ये भगण-नगण-जगण-लघवः ते गयुताः एकेन गुरुणा युताः सन्ति। चरमे चतुर्थे पादे सजसा सगण-जगण-सगणाः जगौ जगण-गुरू च भवति तदा उद्‌गता नाम वृत्तम्। चरणं एकतः एकीकृत्य पठेत् अर्थात् प्रथमं चरणं द्वितीयेन एकीकृत्य पठेत्। "प्रथमद्वितीयौ पादावविलम्बितं पठेत्। अत्यन्तयतिं न कुर्यादित्यर्थः" इति नारायणभट्टाः।

भावार्थ—प्रथम पाद में सगण, जगण; सगण तथा लघु (१० वर्ण) हों, द्वितीय में नगण, सगण, जगण तथा गुरु (१० वर्ण), तृतीय में भगण, नगण, जगण, लघु तथा गुरु (११ वर्ण) तथा अन्तिम चरण में सगण, जगण,

सगण, जगण तथा गुरु (१३ वर्ण) हों। प्रथम तथा द्वितीय पाद बिना यति के अविलम्ब ही एक साथ पढ़े जाँय तो इसे **उद्गता** वृत्त कहते हैं।

उदाहरण—

स. ज. स. ल:

। । S । S । । । S ।

मृगलोचना शशिमुखी च (१०)

न. स. ज. गु.

। । । । । S । S । S

रुचिरदशना नितम्बिनी। (१०)

भ. न. ज. ल.गु.

S । । । । । । S । । S

हंस-ललित-गमना ललना (११)

स. ज. स. ज. गु.

। । S । S । । । S । S । S

परिनीयते यदि भवत्कुलोद्गता॥ (१३)

(**सौरभकम्**)

चरणत्रयं भजति लक्ष्म
यदि सकलमुद्गतागतम्।
र्नौ भगौ भवति सौरभकं
चरणे यदीह भवतस्तृतीयके॥ ७॥

यदि तृतीयके अर्थात् तृतीयचरणे र्नौ रगण-नगणौ भगौ भगण-गुरू च भवतः तथा चरणत्रयं परिशेषात् प्रथमद्वितीय-चतुर्थपादत्रयं उद्गतास्थितं सकलं सम्पूर्णं लक्ष्म लक्षणं भजति धारयति तदा इह शास्त्रे सौरभकं नाम वृत्तम्।

भावार्थ—यदि तृतीय पाद में रगण, नगण, भगण तथा गुरु (१० वर्ण) हों तथा अन्य तीनों पाद (अर्थात् शेष रहने वाले प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ चरण) उद्गता के समान हों तो इसे **सौरभक** वृत्त कहते हैं।

उदाहरण—

स. ज. स. ल.

। । S । S । । S ।

विनिवारितोऽपि नयनेन (१०)

न. स. ज. गु.

। । । । । S । S । S

तदपि किमिहाऽऽगतो भवान् । (१०)

र. न. भ. गु.

। । S । । । S । । S

एतदेव तव सौरभकं (१०)

स. ज. स. ज. गु.

। । S । S । । । S । S । S

यदुदीरितार्थमपि नावबुध्यसे ॥ (१३)

इस उदाहरण में पहला, दूसरा तथा चौथा पाद उद्‌गता के समान है तथा तीसरे लक्षणानुसार गण वाले १० वर्ण हैं। अतः यह सौरभक वृत्त हुआ ।

(ललितम्)

नयुगं सकारयुगलं च
भवति चरणे तृतीयके ।
तदुदितमुरुमतिभिर्ललितं
यदि शेषमस्य खलु पूर्वतुल्यकम् ॥ ८ ॥

तृतीयके चरणे तृतीयपादे नयुगं नगणयुगलं तथा सगणयुग्मं भवति। यदि अस्य शेषं प्रथमद्वितीयचतुर्थपादत्रयं पूर्वतुल्यकं उद्‌गतावत् भवति तद् उरुमतिभिः पण्डितैः ललितं नाम वृत्तम् उदितं कथितम् ॥

भावार्थ—यदि अन्य तीनों चरण उद्‌गता के समान हों, केवल तीसरे चरण में दो नगण तथा दो सगण (१२) हों, तो इसे बहुदर्शी पण्डितलोग **'ललित'** नामक वृत्त कहते हैं।

उदाहरण—

स. ज. स. ल.

। । ऽ । ऽ । । । ऽ ।

सततं प्रियंवद मनून- (१०)

न. स. ज. गु.

। । । । । ऽ । ऽ । ऽ

ममलहृदयं गुणोत्तरम् । (१०)

न. न. स. स.

। । । । । । । । ऽ । । ऽ

सुललितमतिकमनीयतमं (१२)

स. ज. स. ज. गु.

। । ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ । ऽ

पुरुषं त्यजन्ति न तु जातु योषितः (१३) ॥

(उपस्थितप्रचुपित)

म्सौ ज्भौ गौ प्रथमाङ्घ्रिरेकतः पृथगन्यत्
त्रितयं सनजरगास्ततो ननौ सः।
त्रिनपरिकलितजयौ
प्रचुपितमिदमुदितमुपस्थितपूर्वम् ॥ ९ ॥

प्रथमाङ्घ्रिः प्रथमपादः एकतः एकः पृथक् पठनीयः; उद्गतादिवत् द्वितीयेनैकीकृत्य न पठनीय इति भावः। एकतः इत्यत्र प्रथमार्थे तसिल् प्रत्ययः। तत्र म्सौ मगण-सगणौ ज्भौ गौ जगण-भगण गुरू च भवति। अन्यत् त्रितयं पादत्रयं क्रमश एवं भवन्ति। द्वितीयपादे सनजरगाः सगण-नगण-जगण-रगण-लघवः; ततः तृतीये ननौ सः नगणद्वयं सगणश्च; चतुर्थे त्रिनपरिकलित जयौ नगणत्रययुक्तौ जगण-यगणौ कार्यौ। इदम् उपस्थितपूर्वं प्रचुपितम् उपस्थितप्रचुपितमिति नाम्ना प्रसिद्धम्।

भावार्थ—प्रथमपाद में म-स-ज-भ तथा गुरु (१२ वर्ण) द्वितीय में स, न, ज, र तथा गुरु हो; तृतीय में दो नगण तथा सगण हो तथा चतुर्थ में तीन नगण,

जगण तथा यगण हों। इस वृत्त को **उपस्थितप्रचुपित** कहते हैं। इसमें प्रथम चरण अलग करके पढ़ना चाहिए। अर्थात् उद्‌गता में जिस प्रकार प्रथम तथा द्वितीय चरण एक साथ विना विराम के पढ़े जाते हैं उस प्रकार इसमें नहीं होगा, प्रत्युत प्रथम चरण बिल्कुल अलग पढ़ा जायगा। उसके अन्त में विराम होगा। यही इस वृत्त की विशेषता है।

उदाहरण—

म. स. ज. भ. गु. गु.
S S S I I S I S I I S I S S
रामाकामकरेणुकामृगायतनेत्रा
स. न. ज. र. गु.
I I S I I I I S I S I S S
हृदयं हरति पयोधरावनम्रा।
न. न. स.
I I I I I I I I S
इयमतिशयसुभगा
न. न. न. ज. य.
I I I I I I I I I I I S I I S S
बहुविधनिधुवनकुशला ललिताङ्गी॥

(वर्धमानम्)

नौ पादेऽथ तृतीयके सनौ नसयुक्तौ
प्रथमाङ्घ्रिकृतयतिस्तु वर्धमानम्।
त्रितयमपरमपि पूर्वसदृशमिह भवति
प्रततमतिभिरिति गदितं लघुवृत्तम्॥ १०॥

अथ तृतीयके पादे नौ नगणद्वयं सनौ सगण-नगणौ नसयुक्तौ नगण-सगणाभ्यां युक्तौ भवतः। अपरं त्रितयं प्रथमद्वितीयचतुर्थपादत्रयं पूर्वसदृशं

उपस्थितप्रचुपितवद् इह भवति। तदा प्रततमतिभिः विततबुद्धिभिराचार्यैः वर्धमानमिति नाम लघु सुन्दरं वृत्तं गदितं कथितम्। प्रथमाङ्घ्रिकृतयतिस्तु प्रथमाङ्घ्रौ प्रथमचरणे कृतया विरचितया यत्या विरामेण स्तूयते प्रशस्यते प्रशस्ततया पठ्यते इति वर्धमानमित्यस्य विशेषणम्। "तुगभावस्तु 'आगमजमनित्यम्" इति स्मरणादिति वदन्ति नारायणभट्टाः। क्वचित् 'प्रथमाङ्घ्रिकृतयति प्रवर्धमानम् इति पाठः समुपलभ्यते।

भावार्थ—यदि तृतीय चरण में दो नगण, सगण, दो नगण, अन्त में सगण इस प्रकार छ गण (१८ अक्षर) हों तथा अन्य तीनों चरण (प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ) पूर्ववृत्त के समान हों, तो प्रथमपाद के अन्त में यदि होने से प्रशस्त इस वृत्त को विस्तीर्णबुद्धि वाले पण्डित जन 'वर्धमान' कहते हैं।

उदाहरण—

म. स. ज. भ. गु. गु.
S S S । । S । S । S । । S S
बिम्बोष्ठी कठिनोन्नतस्तनावनताङ्गी
स. न. ज. र. गु.
। । S । । । । S । S । S S
हरिणी-शिशुनयना नितम्बगुर्वी।
न. न. स. न. न. स.
। । । । । । । । S । । । । । । । । S
मदकलकरिगमना परिणतशशिवदना
न. न. न. ज. य.
। । । । । । । । । । S । । S S
जनयति मम मनसि मुदं मदिराक्षी॥

(शुद्धविराडार्षभ)

अस्मिन्नेव तृतीयके यदि तजराः स्युः
प्रथमे च विरतिरार्षभं ब्रुवन्ति।

तत् शुद्धविराट् पुरःस्थितं
त्रितयमपरमपि यदि पूर्वसमं स्यात् ॥ ११ ॥

प्रथमे पादे विरतिः विरामः स्यात् यथा अस्मिन्नेव तृतीयपादे तजराः तगण-जगण-रगणाः स्युः यदि अपरमपि त्रितयं प्रथमद्वितीयचतुर्थपादत्रय-मित्यर्थः पूर्वसमम् उपस्थितप्रचुपितसमानं स्यात् तर्हि तत् शुद्धविराडिति पुरः अग्रे स्थितं विद्यमानं यस्य तादृशं आर्षभं शुद्धविराडार्षभमिति वृत्तं ब्रुवन्ति आचार्याः। पिङ्गलच्छन्दःसु शुद्धविराड्वृषमिति नाम्ना वृत्तमिदं कथितमिति ध्रुवं वेदितव्यम्।

भावार्थ—यदि तीसरे पाद में तगण-जगण तथा रगण हो तथा अन्य तीनों चरण पूर्वछन्द उपस्थितप्रचुपित वृत्त के समान हों तथा प्रथम पाद के अन्त में विराम हो तो उसे शुद्धविराडार्षभ छन्द कहते हैं। पिंगलने इसी छन्द को 'शुद्ध-विराड्वृषभ' नाम दिया है। कुछ व्याख्यातागण यहाँ दो छन्द मानते हैं। प्रथम पाद के अन्त में यदि विराम हो तो 'आर्षभ' वृत्त कहते हैं और यदि प्रत्येक पाद के अन्त में यति हो तो इसे 'शुद्धविराट्' छन्द कहते हैं।

उदाहरण—

भ. स. ज. भ. गु. गु.
S S S I I S I S I S I I S S
कन्येयं कनकोज्ज्वला मनोहरदीप्तिः
स. न. ज. र. गु.
I I S I I I I S I S I S S
शशिनिर्मलवदना विशालनेत्रा।
त. ज. र.
S S I I S I S I S
पीनोरु नितम्बशालिनी
न. न. न. ज. य.
I I I I I I I I I S I I I S S
सुखयति हृदयमतिशयं तरुणानाम् ॥

(गाथा)

विषमाक्षरपादं वा पादैरसमं दशधर्मवत् ।
यच्छन्दो नोक्तमत्र गाथेति तत् सूरिभिः प्रोक्तम् ॥ १२ ॥

अत्र ग्रन्थेऽनुक्तानां छन्दसां सामान्यसंज्ञामभिदधाति । अत्र ग्रन्थे यत् छन्दः न उक्तं न कथितं तत् सूरिभिः विद्वद्भिः गाथा इति नाम्ना प्रोक्तम् कथितम् । कथंभूतं छन्दः । विषमाक्षरपादं विषमानि अक्षराणि येषु तथाभूताः पादाः यस्य तत् विषमाक्षरपादधारि विषमं छन्दः इति भावः । वा अथवा । पादैरसमं पादैः चतुर्भिः पादैः असमं अतुल्यं त्रिपादं पञ्चपादं षड्पादमिति यावत् एतत् सर्वं गाथेति नाम्ना निगद्यते खलु । पादैरसमत्वे दृष्टान्तमाह—दशधर्मवत् । दशधर्मशब्दयोगात् लक्षणया महाभारतस्था षट्पदा गाथा दशधर्मशब्देनोच्यते । सा च यथा—

दशधर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र ! निबोध तान् ।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ।
त्वरमाणश्च भीरुश्च लुब्धः कामी च ते दश ॥

इत्थं विषमाक्षरपादानां त्रिपादषट्पादादीनामसामान्यलक्षणाक्रान्तानां वा छन्दसां सामान्येन 'गाथा' इति संज्ञा सुधीभिरवगन्तव्या ।

भावार्थ—इस श्लोक में अनुक्त छन्दों की सामान्य संज्ञा का विधान किया गया है । जो छन्द इस ग्रन्थ में नहीं कहे गए हैं उन्हें **'गाथा'** कहते हैं । ये छन्द प्रायः दो प्रकार के हैं । एक तो ऐसे हैं जिनके चरणों में विषम अक्षर हैं—समान अक्षर नहीं हैं अर्थात् जो विषम छन्द हैं । दूसरे वे हैं जिनके पाद सामान्य संख्या चार से भिन्न हैं अर्थात् त्रिपादी तथा षट्पादी छन्द । उदाहरण के लिए महाभारत की 'दशधर्मं' शब्द से प्रारम्भ होने वाली पूर्वोक्त गाथा को लिया जा सकता है । इसमें छ पाद हैं । अतः इसे 'गाथा' कहेंगे । इसी तरह जिन छन्दों में चार अधिक या कम पाद होंगे उन्हें 'गाथा' नाम दिया जायेगा ।

विशेष—'गाथा' नामक प्राकृतभाषा में एक छन्द है उसको इस 'गाथा' से भिन्न समझना चाहिए । संस्कृत में 'आर्या' का जो लक्षण है वही यदि प्राकृत में उपलब्ध हो तो उसे 'गाथा' कहेंगे अर्थात् संस्कृत की 'आर्या' ही प्राकृत की 'गाथा' है । गाथा का लक्षण—

पढयं बारह मत्ता बीए अट्ठारहेहिं संजुत्ता ।
जह पढमं तह तीअं दहपञ्च विहूसिआ गाहा ॥

पहले चरण में १२ मात्राएँ होती हैं; दूसरे में १८ मात्राएँ तीसरा पहले के समान होता है अर्थात् १२ मात्राएँ आधे में १५ मात्राएँ। बहुत से विद्वानों का कथन है कि गाथा पुरानी है उसके ढंग पर पीछे संस्कृत में 'आर्या' रखी गई। हाल संगृहीत सतसई गाथा में ही है अतः हालसप्तसती को गाथा सप्तशती भी कहते हैं। यथा—

अमिअं पाडअव्वं पढिडं सोडं अ जे ण आणंति।
कामस्स तत्ततंति कुणन्ति ते कह ण लज्जन्ति॥
[अमृतं प्राकृतकाव्यं पठितुं श्रोतुं च ते न जानन्ति।
कामस्य तन्त्रचिन्तां कुर्वन्ति ते कथं न लज्जन्ते॥]

इति पञ्चमोऽध्यायः॥



षष्ठोऽध्यायः

(प्रत्ययाः)

इतः पूर्वं समाक्षर-विषमाक्षर-मात्रावृत्तत्रयं निर्दिश्य बहुत्र कविकृतिषु-प्रयुक्तान् प्रस्तारादीन् ग्रन्थकृन्निर्दिशति । ते च षड्विधा बोद्धव्याः । यथा—

प्रस्तारो नष्टमुद्दिष्टमेकद्व्यादिलगक्रिया ।
सङ्ख्या चैवाध्वयोगश्च षडेते प्रत्ययाः स्मृताः ॥ १ ॥

प्रस्तादिभेदान् निरूपयति—१. प्रस्तारः, २. नष्टम्, ३. उद्दिष्टम्, ४. एक-द्व्यादिलगक्रिया, ५. संख्या, ६. अध्वयोगः, च, एते षट् प्रत्ययाः स्मृताः, इति-ग्रन्थकारस्येष्टिः । प्रत्ययशब्दो बह्वर्थकः, तद्यथा—'प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञान-विश्वासहेतुषु', इत्यमरः । अत्रेदमवधेयम्—छन्दोविद्भिः प्रतीयन्ते ज्ञायन्ते अर्था-एभिरिति प्रत्ययाः ।

भावार्थ—इसके पहले तीन प्रकार के (समाक्षर, विषमाक्षर तथा मात्रिक) । छन्दों का वर्णन किया गया है, इनके बाद अब यहाँ उन नामतः अनुक्त छन्दों के परिचयार्थ इस अध्याय में छः प्रकार के प्रत्ययों का वर्णन किया जा रहा है, प्रत्ययों के नाम हैं—१. प्रस्तार, २. नष्ट, ३. उद्दिष्ट, ४. एकद्व्यादिलगक्रिया, ५. संख्या और ६. अध्वयोग ।

नोट—छन्द के पर्यायवाचक-शब्द श्लोक तथा वृत्त शब्दों का प्रयोग सर्वत्र देखा जाता है । विशेषतः श्लोक शब्द अनुष्टुप् का पर्याय है । पुराणों की श्लोक संख्या का आकलन अनुष्टुप् के आधार पर ही किया जाता है । इस प्रकरण में प्रस्तार आदि छः प्रत्ययों के सम्बन्ध में विस्तार से कहा गया है ।

(प्रस्तारः)

प्रत्ययस्य ये नष्टादयो भेदाः सन्ति तेषां परिज्ञानाय प्रथमं प्रस्तार एव निर्दिश्यते—

पादे सर्वगुरावाद्याल्लघुं न्यस्य गुरोरधः ।
यथोपरि तथा शेषं भूयः कुर्यादमुं विधिम् ॥ २ ॥
ऊने दद्याद् गुरूनेव यावत्सर्वलघुर्भवेत् ।
प्रस्तारोऽयं समाख्यातश्छन्दोविचितिवेदिभिः ॥ ३ ॥

छन्दांसि विचीयन्ते (विचार्यन्ते) अनयेति छन्दोविचितिः, छन्दःशास्त्रम्, तद् वेदितुं शीलं येषां ते छन्दःशास्त्रवेदिनः । तैरेवायं छन्दसां प्रस्तारः कथितः । पदानां प्रस्तरमेव प्रस्तारः, भावे घञ् । पादे सर्वगुराविति-सर्वे गुरवो वर्णा यस्मिन् पादे तत्र आद्यगुरोरक्षरात् अधः लघुवर्णं स्थापयित्वा तदनु यथोपरि उपर्युक्त-प्रकारवत् तेनैव प्रकारेण, शेषं वर्णपूर्ति यावद् द्वितीयादिकं गुरुं लघुं वा क्रमेण-लिखेत् । अमुं विधिमनुसरेत् ।

ऊने गुरोरधस्ताद् गुरुवर्णानेव लिखेत् । यावत्पर्यन्तं सर्वलघुपादो न भवेत्, छन्दोविचितिवेदिभिः छन्दःशास्त्रज्ञैः अयं प्रकारः प्रस्तारस्य सम्यक्-प्रकारेण आख्यातः कथितः । अधोनिर्दिष्टायां तृतीयायां प्रस्तारबोधतालिकायां प्रस्तार-क्रमो गणदेवता गणफलं च सुस्पष्टं निर्दिष्टमस्ति । ग्रन्थान्तरे मात्रावृत्तप्रस्तार एवं समुपलभ्यते—

'तत्र प्रथमपङ्क्तौ स्याद् गुरुपादस्तु पूर्ववत् ।
द्वितीयपङ्क्तौ प्रथमादधो लेख्यो लघुर्गुरोः ॥
यथोपरि तथा शेषमूनस्थाने लघुं न्यसेत् ।
तृतीयादिषु पङ्क्तिष्वप्येवमेव गुरोरधः ॥
लघुं न्यस्यावशिष्टन्तु पूर्ववत् परिकीर्तितम् ।
न्यूने मात्रात्रयं देयं तस्मिन्नादौ गुरुर्द्वयोः ॥
कलयोः स्यात् ततः पूर्वं लघुर्देयो भवेत्ततः ।
चतुर्थपङ्क्तावप्येवं पञ्चमं तु गुरोरधः ॥
लघुद्वयं लिखेत् पूर्वं शिष्टं तूपरिवद्भवेत् ।
एवं सर्वत्र विज्ञेयः कलाप्रस्तार उत्तमः ॥
तेन द्विगुरुपादस्य पञ्चभेदा भवन्त्यमी ।
सर्वान्तमध्यादिगुरुश्चतुर्लघुगणाः स्मृताः ॥

भावार्थ—अब प्रस्तार विधि का वर्णन किया जा रहा है—सर्वगुरुवाले पाद में सर्व प्रथम गुरु के नीचे लघु लिखें । फिर दाहिनी ओर की रेखा को ऊपर वाली रेखा के समान रख दें । इसी प्रकार शेष स्थानों में गुरु, लघु मात्रा को स्थापित करें ।

यदि बाँयी ओर का स्थान खाली हो तो उस स्थान पर तब तक गुरु वर्णों को ही लिखें, जब तक सर्वलघुपाद की प्राप्ति न हो जाय । छन्द-

शास्त्र वेत्ता इस विधि को 'प्रस्तार' कहते हैं। यह प्रस्तारविधि उक्ता, अत्युक्ता, मध्या तथा प्रतिष्ठाभेद से अनेक प्रकार की होती है। यहाँ इनके क्रमशः उदाहरण दिये जा रहे हैं—

वर्णप्रस्तारबोधक तालिका

(क) उक्ता के दो भेद—

१. ऽ एक गुरु (प्रथम भेद)।
२. । एक लघु (द्वितीय भेद)।

(ख) अत्युक्ता के चार भेद—

१. ऽऽ दो गुरु (प्रथम भेद)।
२. ।ऽ एक लघु एक गुरु (द्वितीय भेद)।
३. ऽ। एक गुरु एक लघु (तृतीय भेद)।
४. ।। दो लघु (चतुर्थ भेद)।

(ग) मध्यमा के आठ भेद—

क्रम	मात्रा	गणनाम	देवता	फल
१.	ऽऽऽ	मगण	भूमि	श्रीः
२.	।ऽऽ	यगण	जल	वृद्धि
३.	ऽ।ऽ	रगण	अग्नि	नाश
४.	।।ऽ	सगण	वायु	भ्रमण
५.	ऽऽ।	तगण	व्योम	धननाश
६.	।ऽ।	जगण	सूर्य	रोग
७.	ऽ।।	भगण	चन्द्र	कीर्ति
८.	।।।	नगण	देव	आयु

(घ) प्रतिष्ठा (अर्धसमप्रस्तार) के सोलह भेद—

१.	ऽऽऽऽ	चार गुरु	(प्रथम भेद)।
२.	।ऽऽऽ	एक लघु तीन गुरु	(द्वितीय भेद)।
३.	ऽ।ऽऽ	गुरु लघु गुरु गुरु	(तृतीय भेद)।
४.	।।ऽऽ	लघु लघु गुरु गुरु	(चतुर्थ भेद)।
५.	ऽऽ।ऽ	गुरु गुरु लघु गुरु	(पंचम भेद)।
६.	।ऽ।ऽ	लघु गुरु लघु गुरु	(षष्ठ भेद)।
७.	ऽ।।ऽ	गुरु लघु लघु गुरु	(सप्तम भेद)।

८.	।।।S	तीन लघु एक गुरु	(अष्टम भेद) ।
९.	SSS।	तीन गुरु एक लघु	(नवम भेद) ।
१०.	।SS।	लघु गुरु गुरु लघु	(दशम भेद) ।
११.	S।S।	गुरु लघु गुरु लघु	(एकादश भेद) ।
१२.	।।S।	लघु लघु गुरु लघु	(द्वादश भेद) ।
१३.	SS।।	गुरु गुरु लघु लघु	(त्रयोदश भेद) ।
१४.	।S।।	लघु गुरु लघु लघु	(चतुर्दश भेद) ।
१५.	S।।।	गुरु लघु लघु लघु	(पंचदश भेद) ।
१६.	।।।।	चार लघु	(षोडश भेद) ।

नोट—यहाँ तक समवर्ण प्रस्तार का वर्णन कर दिया गया है । इसके आगे **अर्धसमप्रस्तार** की चर्चा की जा रही है—'अर्धसमप्रस्तारेऽर्धप्रस्तार: कार्य:' । इसके बाद **विषम प्रस्तार** का सूत्र रूप में निर्देश किया जा रहा है—'विषम-प्रस्तारे पादचतुष्टयस्य प्रस्तार: कार्य:' इसी प्रकार एक भेद **मात्राप्रस्तार** भी होता है । इनका विशेष अध्ययन करने के लिये महर्षिपिङ्गल कृत '**छन्दःसूत्र**' का अवलोकन करें ।

(नष्टम्)

प्रत्ययभेदे द्वितीयो नष्टप्रत्ययो निर्दिश्यते—

नष्टस्य यो भवेदङ्कस्तस्यार्धेऽर्धे समे च लः ।
विषमे चैकमादाय तस्यार्धेऽर्धे गुरुर्भवेत् ॥ ४ ॥

नष्टस्य वृत्तस्य य: समो विषमो वा अङ्को भवेत् तदनुसारं गुरुलघुविचारो विधेय: । तद् यथा—नष्टे वृत्ते यदि समोऽङ्कः स्यात् तत्र लघु: (।) लेखनीय: । यदि नष्टवृत्तस्य विषमाङ्कः स्यात् तर्हि प्रथमो गुरु: (S) भवति । एवं प्रकारेण वृत्तसमाप्ति यावत् तस्य अर्धेऽर्धे कृते समो विषमो वा यादृग् अङ्कोऽवशिष्ट: स्यात् तथाङ्कः प्रयोज्य: (विषमे गुरु: समे च लघुरिति) । विषमे सति अङ्केऽर्धी-करणायोगात् तत्रैकमधिकं सम्मेल्य तदनु अर्धयेत् तत्र विषमे गुरुर्भवति ।

समेऽर्धे सति लघु: (।) विषमे च गुरु: (S) कार्यमिति सम्पिण्डितोऽर्थ: । वर्णसङ्ख्याप्रस्तारार्थं यत्र विषमो वर्ण: स्यात् तत्र तस्मिन्नेकमङ्कं सम्मेल्य पुन: तस्यार्धं विधाय गुरुलघुव्यवहारो विधेय इति ।

ग्रन्थान्तरे मात्रानष्टस्य प्रकार एवं निर्दिष्टम्—

संस्थाप्येह पृथङ्मात्रास्तत्र चाङ्कान् समालिखेत् ।
एकद्वयङ्कतृतीयाङ्का नायं मात्रात्रये क्रमात् ॥

ततः पूर्वं द्वयोन्मिश्रानन्ते पृष्ठाङ्कलोपनम् ।
पूर्वपूर्वेतरस्यापि लोपः सम्भवतोऽभवत् ।।
यस्य यस्य भवेल्लोपस्तदधो गुरुता भवेत् ।
परया मात्रयास्थं तन्मात्रा नष्टं वदेत् सुधीः ।।

भावार्थ—यदि किसी प्रत्यय का भेद ज्ञात न हो तो उसको ज्ञात करने की रीति का नाम **नष्टप्रत्यय** है। यदि नष्टवृत्त का अंक सम २, ४, ६, ८ आदि हो तो पहले लघु लिखना चाहिए। यदि विषम अंक १, ३, ५ आदि हो तो पहले गुरु लिखना चाहिये, इसी भाँति सम्पूर्ण वृत्त के समाप्त होने तक उसे आधा-आधा करते रहें। यदि वह आधा भाग सम अंक वाला हो तो वहाँ उसे लघु लिखे और यदि विषम अंक हो तो उसे गुरु लिखें। जब विषम अंक आधा न होता हो तो उसमें एक संख्या जोड़कर उसे सम बना लें फिर उसे आधा करें।

प्रश्न—तीन अक्षर वाले वृत्त का पाँचवाँ भेद क्या होगा ?

उत्तर—पाँचवाँ अंक विषम है, अतः प्रथम एक गुरु होगा, फिर पाँच में एक जोड़ा तो छः हुआ, इसका आधा किया तो तीन हुआ, यह दूसरे क्रम का विषम अंक है अतः दूसरा **गुरु** होगा, तीन अंक भी विषम हैं इसमें फिर एक जोड़ा तो चार हुआ इसका आधा दो सम है, अतः तीसरा भी **लघु** होगा। इस प्रकार तीन अक्षर की जाति वृत्त की मात्राएँ इस प्रकार निर्धारित हुई—ऽ ऽ । अतः तीन अक्षर वाले वृत्त के पाँचवें भेद में प्रथम दो गुरु फिर एक लघु होता है। इसी प्रकार समनष्ट, अर्धसमनष्ट विषमनष्ट, आदि भेदों का भी विचार कर लेना चाहिये।

(उद्दिष्टम्)

अथ प्रत्ययशोधनार्थमुद्दिष्टभेदं निर्दिशति—

उद्दिष्टं द्विगुणानङ्कानुपर्याद्यात् समालिखेत् ।
लघुस्थाने तु येऽङ्काः स्युस्तैः सैकैर्मिश्रितैः भवेत् ।। ५ ।।

अथ क्रमप्राप्तमुद्दिष्टं निरूप्यते—आद्याक्षरादारभ्य अन्तिमाक्षरं यावत् उपरि-उपरि द्विगुणान् अङ्कान् विलिखेत्। प्रथमाक्षरस्योपरि एकमङ्कं लिखेत्। द्वितीयाक्षरस्योपरि एकमङ्कं द्विगुणीकृत्य स्थापयेत्। एवमेव क्रमः अन्तिमाक्षरं यावत् कर्तव्यः। ये तु—तत्र उपरिलिखितेषु लघ्वक्षरस्योपरि वर्तमाना अङ्काः तैः सैकैः एकाधिकेनाङ्कैः, मिश्रितैः युक्तैरुदिष्टं नाम प्रत्ययः प्रस्तारो वा भवेत्।

भावार्थ—उद्दिष्ट नामक तीसरे प्रस्तार भेद का प्रकार—**प्रश्न**—आदि में में दो लघु तीसरा गुरु (। । ऽ) यह त्र्यक्षर जाति का कौन सा भेद है ? **उत्तर**—यह त्र्यक्षर जाति का चौथा भेद है ।

उपपत्ति—उद्दिष्ट प्रस्तार का प्रथम अक्षर गुरु हो अथवा लघु हो उसके ऊपर एक लिखें । उसके बाद वाले अक्षर के ऊपर एक से दूना अर्थात् दो अंक रखें । इसी क्रम से चार, आठ आदि अंक रखें । उन (उदाहरण में प्रयुक्त पदावली) में जितने लघु वर्ण हों उन्हें जोड़कर जो संख्या प्राप्त हो उसमें एक और मिलाकर जो प्राप्त हो उसी विभाग वाला उद्दिष्ट भेद समझें ।

उदाहरण—उक्त उदाहरण में दो वर्ण लघु और एक गुरु है । उनके ऊपर क्रमशः एक और दो संख्या रखी गयी, अगला तीसरा वर्ण गुरु है, इसके ऊपर चार की संख्या लिखी गयी । गुरु की संख्या (४) छोड़ दी और प्रथम दोनों लघु वर्णों की संख्या (१ + २ =) जोड़ दी तो योग फल तीन मिला इसमें एक जोड़ दिया तो चार हो गया । अतः उत्तर मिला कि यह त्र्यक्षर जाति भेद का चतुर्थ भेद है । इसी प्रकार अन्य भेद भी समझें ।

त्र्यक्षरप्रस्तारे समोद्दिष्टम्—चतुर्थभेदेऽन्त्यगुरुः—

१	२	४
।	।	ऽ
ल.	ल.	गु.

चतुरक्षरप्रस्तारे समोद्दिष्टम्—सप्तमभेदे-आद्यन्तगुरुः—

१	२	४	८
ऽ	।	।	ऽ
गु.	ल.	ल.	गु.

अर्धसमोद्दिष्टम्—पञ्चमभेदे तृतीयलघुः—

१	२	४	८
ऽ	ऽ	।	ऽ
गु.	गु.	ल.	गु.

विषमोद्दिष्टम्—तस्य प्रकारः—

१	२	४	८	१६	३२	६४	१२८
।	।	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
ल.	ल.	गु.	गु.	गु.	गु.	गु.	गु.

(एकद्व्यादिलगक्रिया)

अथोक्तादिषु वृत्तेषु प्रत्ययशोधनार्थमेकद्व्यादिलगक्रिया निर्दिश्यते—

वर्णान् वृतभवान् सैकानौत्तराधर्यतः स्थितान् ।
एकादिक्रमशश्चैतानुपर्युपरि निक्षिपेत् ॥ ६ ॥
उपान्त्यतो निवर्तेत त्यजेदेकैकमूर्ध्वतः ।
उपर्याद्याद् गुरोरेवमेकद्व्यादिलगक्रिया ॥ ७ ॥

उक्ताऽत्युक्त्यादिवृत्तजातान् वर्णान् एकेन सहितान्, उत्तराधरभावेन संस्थितान् विदध्यात् । तानङ्कान् एकादिक्रमतो वर्णानाम् उपरि-उपरि निक्षिपेत् लिखेदिति भावार्थः । अर्थात्, अधस्थितस्य अङ्कस्य उपरि एकमङ्कं, तस्योपरि पुनरेकमङ्कं दद्यात् तदुपरि पुनरेकमङ्कं स्थापयेत् । तत्पश्चात् क्रमे विपरिवर्तिते सति क्रमेण ऊर्ध्वत एकैकं त्यजेत् आद्यात् सर्वगुरोः उपरि एकद्व्यादिलगक्रिया ज्ञातव्या । सा चेत्थम्—अयमेकलघुः, अयं द्विलघुः, अयं च त्रिलघुर्भेदः । एवञ्च—अयमेकगुरुः, अयं द्विगुरुः, अयं च त्रिगुरुभेदः । **अयमेव मेरुप्रस्तारेति** नाम्ना जोघुष्यते वृत्तविद्भिः । अस्मिन् क्रमे सर्वोपरि स्थितः सर्वगुरुः सर्वाधस्ताद्वर्तमानः सर्वलघुरिति-सम्प्रदायः । अत्र एकाक्षरादिप्रस्तारोपक्रमे गुरु-लघुनिर्देशक्रमः—उपरिष्टादारभ्य गुरुवृत्तानि, अधस्तादारभ्य लघुवृत्तानीति जानीयात् । तेषां क्रमः—१. पञ्चगुरुवृत्तमेकम् । २. चतुर्गुरूणि वृत्तानि पञ्च । ३. त्रिगुरूणि वृत्तानि दश । ४. द्विगुरूणि वृत्तानि दश । ५. एकगुरूणि वृत्तानि पञ्च । एवमेव लघुवृत्तप्रकारो बोध्यः—१. पञ्चलघुवृत्तमेकम् । २. चतुर्लघूनि वृत्तानि पञ्च । ३. त्रिलघूनि वृत्तानि दश । ५. एकलघूनि वृत्तानि पञ्च । तान्यथा—

१. उक्तायाः प्रस्तारे—१ १ ।
२. अत्युक्तायाः प्रस्तारे—१ २ १ ।
३. मध्यायाः प्रस्तारे—१ ३ ३ १ ।
४. प्रतिष्ठायाः प्रस्तारे—१ ४ ६ ४ १ ।
५. सुप्रतिष्ठायाः प्रस्तारे—१ ५ १ ० १ ० ५ १ ।

एकद्व्यादिलगक्रियाया अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा, गायत्र्यादिबहवो भेदा दृष्टिपथमायान्ति । तत्रैव समविषमादिभेदैरपि एते भिद्यन्ते । पताकाप्रस्तारस्याप्येमेव प्रकाराश्छन्दोविद्भिः प्रकीर्तिताः । पताकानन्तरं मात्रामेरुप्रस्तारः, मात्राखण्डमेरुप्रस्तारोऽपि दृश्यते क्वचिच्च मात्रामर्कटीप्रकारस्यापिप्रयोगो भवत्येव ।

भावार्थ—प्रस्तारों के अनेक भेद होते हैं, उनमें कितने लघु होते हैं और कितने गुरु, इसको जानने के लिये **एकद्व्यादिलगक्रिया** का निर्देश किया जा रहा है, वृत्त के वर्णों की जितनी संख्या हो उसमें अपनी ओर से एक और मिलाकर लिखें। उन अंकों को एक के ऊपर एक लिखकर मिला दे, किन्तु अन्त्य अंक को एक दूसरे से न मिलाया जाय, इन अंकों में सबसे ऊपर वाला सर्वगुरु और सब से नीचे वाला सर्वलघु कहा जाता है, अर्थात् पहला सर्वगुरु, दूसरा एक गुरु तीसरा भेद द्विगुरु होता है, जब हम नीचे से ऊपर की ओर गणना करेंगे तो सबसे नीचे का सर्वलघु, उसके ऊपर का एक लघु और तीसरा द्विलघु होगा।

(संख्या)

अथ क्रम प्राप्तां सङ्ख्यां निर्दिशति—

लगक्रियाङ्कसन्दोहे भवेत् सङ्ख्याविमिश्रिते।
उद्दिष्टाङ्कसमाहारः सैको वा जनयेदिमाम् ॥ ८ ॥

लघुगुरुक्रियायां तद्ज्ञानव्यापारे येऽङ्काः प्रकीर्तितास्तेषां समूहे विमिश्रिते परस्परं योजिते सति सङ्ख्या भवेत्। एतेषामेकत्रित्र्येककानां मेलने अष्टौ भेदाः सम्पद्यन्ते, एवं चतुरक्षरे च (१,४,६,४,१) एकचतुःषट्चतुरेकात्मिकालगक्रिया भवति, एतेषामङ्कानां परस्परसङ्कलने षोडशसङ्ख्या भवति, एतावन्त एव प्रस्तारभेदाश्चतुरक्षरजातेरपि सम्भवन्ति, अथवा एकसहित उद्दिष्टाङ्कसमाहार इमां सङ्ख्यां जनयेत्। यथा त्र्यक्षरे एक द्विचतूरूपाः पूर्वरीत्या निर्दिष्टाः सङ्कलने कृते सति सप्तभेदाः सम्पद्यन्ते।

भावार्थ—यदि उपर्युक्त लगक्रिया अंक समूह को आपस में मिला देने से संख्या नामक प्रस्तार भेद सिद्ध हो जाता है। अथवा उद्दिष्ट प्रत्यय (प्रस्तार) के अंक समूह में एक संख्या अधिक जोड़ देने से संख्या नामक प्रत्यय की सिद्धि होती है।

(अध्वयोग)

अन्ते षष्ठमध्वयोगप्रस्तारं व्याकरोति—

संख्यैव द्विगुणैकोना सद्भिरध्वा प्रकीर्तितः।
वृत्तस्याङ्गुलिकी व्याप्तिरधः कुर्यात्तथाङ्गुलिम् ॥ ९ ॥

समादिवृत्तानां या संख्या पूर्वं कथिता सा द्विगुणीकृता पुनरेकोना प्रस्तारविधिविशेषज्ञैः स मार्गः प्रकीर्तितः। अत्र विषये ग्रन्थकृदुपपत्तिं प्रस्तौति—वृत्तप्रस्तारस्य व्याप्तिः (स्थानम्) अङ्गुलिपरिमिता भवति। अतोऽङ्गुलायामा-

गुरुलघवो विधेयाः। अस्यायमर्थः–प्रस्तारस्य प्रत्येकमन्तरालमङ्गुलिपरिमितमेव स्यात्। यथा—त्र्यक्षराया जातेः प्रस्तारप्रयोगाय कियत्स्थानमपेक्षितं भवतीति प्रश्ने सति इदमुत्तरम्—तत्र अष्टसङ्ख्यां द्विगुणीकृत्य या (षोडश) सङ्ख्या स्यात् तामेकेन ऊनयित्वा पञ्चदशसङ्ख्या भवति। सा एव पर्याप्ता। अर्थात् तदर्थं पञ्चदशाङ्गुलपरिमितस्थानमपेक्षत इति फलितोऽर्थः।

भावार्थ—समादिवृत्तों की संख्या को दूना करके उस संख्या के योग में से एक संख्या को कम कर देने का नाम छन्दोविदों ने **'अध्वा'** रखा है। अर्थात् प्रस्तार लेखन स्थान को **'अध्वा'** कहते हैं। **लेखन प्रकार**—वृत्तलेखन में एक अंगुल परिमित (चौड़ाई युक्त) स्थान खाली हो उसे **'अध्वा'** या **'अध्वयोग'** कहते हैं।

वंशेऽभूत्कश्यपस्य प्रकटगुणगणः शैव सिद्धान्तवेत्ता
विप्रः पव्येकनामा विमलतरमतिर्वेदतत्त्वार्थवेत्ता।
केदारस्तस्य सूनुः शिवचरणयुगाराधनैकाग्रचित्त-
श्छन्दस्तेनाभिरामं प्रविरचितमिदं वृत्तरत्नाकराख्यम्॥ १०॥

इति श्रीकेदारभट्टविरचितो वृत्तरत्नाकराख्यो ग्रन्थः सम्पूर्णः।

सम्प्रति स्वप्रतिज्ञानुसारं वृत्तभेदान्निरूप्य श्रीमान् केदारभट्टः स्वकीयवंशादिकं वर्णयन् ग्रन्थमुपसंहरति—कश्यपस्य महर्षेः वंशे प्रसिद्धगुणगणालङ्कृतः पव्येकनामको ब्राह्मणोऽभवत्। तं प्रशंसन् ग्रन्थकृन्निर्दिशति शिवो देवता येषां ते शैवाः तेषां सिद्धान्तस्य विशेषज्ञः, वेदानां तत्त्वार्थस्य (अद्वैतरूपविषयस्य) ज्ञाने शुद्धधीः सम्बभूव। तस्यैव सूनुः केदारभट्ट आसीत्। सः शिवचरणयुगलस्य सेवनेन एकाग्रं मनो यस्य सः तेन मनोहरमिदं वृत्तरत्नाकराख्यं छन्दः (छन्दोग्रन्थः) सम्यक्प्रकारेण रचितम्।

भावार्थ—महर्षि कश्यप के वंश में ब्राह्मणोचित गुणगणों से अलंकृत शैव सिद्धान्त के मर्मज्ञ, वेद के तत्त्वार्थ बोध में निर्मल बुद्धि वाला **पव्येक नामक** ब्राह्मण ने जन्म लिया। शिवजी की उपासना में दत्तचित्त रहने वाले **पव्येक** के पुत्र केदारभट्ट पण्डित ने मनोहर (शीघ्र छन्दों का ज्ञान कराने वाला) **वृत्तरत्नाकर** नामक (इस) ग्रन्थ की रचना की॥ १०॥

इति षष्ठोऽध्यायः



वृत्तरत्नाकरस्य

अति लघूत्तरीयाणि लघूत्तरीयाणि च प्रश्नोत्तराणि

उत्तर मध्यमा द्वितीय खण्डस्य चतुर्थ प्रश्न पत्रस्य (ख)

प्रश्न: १— वृत्तरत्नाकरस्य रचयिता क:?

उत्तरम्— भट्टकेदार:।

प्रश्न: २— भट्टकेदारस्याराध्यो देव: क:?

उत्तरम्— भगवान् शंकर:।

प्रश्न: ३— भट्टकेदारस्य पितुर्नाम किम्?

उत्तरम्— पवि:।

प्रश्न: ४— भट्टकेदारो जात्या क आसीत्?

उत्तरम्— ब्राह्मण:।

प्रश्न: ५— वृत्तरत्नाकरप्रणयनस्य प्रयोजनम् किम्?

उत्तरम्— बालानां सुखपूर्वकं छन्द: शास्त्रस्यज्ञानम्।

प्रश्न: ६— भट्टकेदार कृतं डाला लक्षण श्लोक: क:?

उत्तरम्— सर्वगुर्मो मुखान्तर्लौ यरावन्तगलौ सतौ। ग्मध्याद्यौ ज्भौ त्रिलोनोऽष्टौ भवन्त्यत्र गुणास्त्रिका:।

प्रश्न: ७— आर्यादि मात्रिक छन्दस्सु कति चतुर्मात्रिका: गणा: भवन्ति?

उत्तरम्— पञ्च।

प्रश्न: ८— आर्यादिमात्रिक छन्दस्स् ुद्य भवा५ चतुर्मात्रिका: पञ्चगणा: के सन्ति?

उत्तरम्— ज्ञेया: सर्वान्त मध्यादिगुरवोऽत्र चतुष्कला:

गणाश्चतुर्लघूपेता: पञ्चार्यादि षुसंस्थिता:।। इति।

तथाहि— (१) सर्वगुरुर्गण: ऽ ऽ (२) अन्तगुरुर्गण: ।।ऽ

(३) मध्यगुरुर्गण: । ऽ । (४) आदिगुरुर्गण: ऽ । ।

(५) सर्वलघुर्गण: ।।।।

प्रश्न: ९— वृत्तरत्नाकरकाराभिहितं गुरुलघुलक्षणं लिखत?

उत्तरम्— सानुस्वारो विसर्गान्तो दीर्घो युक्तपरश्च य:।

वा पादान्ते त्वसौ ग्वक्रो ज्ञेयोऽन्यो मात्रिको लृजु:।।

प्रश्नः १०— को नाम क्रम संयोगः?

उत्तरम्— पादादाविह वर्णस्य संयोगः क्रमसंज्ञकः।
पुरःस्थितेन तेन स्या ल्लघुताऽपि क्वचिद्गुरोः।।

प्रश्नः ११— क्रम संयोगस्योदाहरणं किम्?

उत्तरम्— तरुणं सर्षपशाकं नवौदनं पिच्छिलानि च दधीनि।
अल्पव्ययेन सुन्दरि ग्राम्यजनो मिष्टमश्नाति।।

अस्य श्लोकस्य चतुर्थ चरणस्यादिभो वर्णो 'ग्रा' विद्यते। अतएव तदनुसारेण रिवर्णो दीर्घः स्यात्। अथापि क्रम संयोगत्वात् 'रि' वर्णः ह्रस्व एव मन्यते।

प्रश्नः १२— पादस्य लक्षणं किम्?

उत्तरम्— ज्ञेयः पादः यतुर्थोंशः।

प्रश्नः १३— यतेर्लक्षणं किम्?

उत्तरम्— यतिर्विच्छेदसंज्ञिता।

प्रश्नः १४— छन्दसः कयोः पादयोः युक् संज्ञा भवति?

उत्तरम्— समपादयोः (द्वितीय चतुर्थयो रित्यर्थः)।

प्रश्नः १५— छन्दसः कयोः पादयोरयुक् संज्ञा भवति?

उत्तरम्— विषमपादयोः (तृतीय प्रथमत्योरित्यर्थः)।

प्रश्नः १६— वृत्तस्य कति भेदाः भवन्ति?

उत्तरम्— त्रयः।

प्रश्नः १७— के त्रयो वृत्तस्य भेदाः सन्ति?

उत्तरम्— १. समवृत्तम्, २. अर्धसमवृत्तम्, ३. विषमवृत्तञ्च।

प्रश्नः १८— समवृत्तस्य किं लक्षणम्?

उत्तरम्— अंघ्रयोयस्य चत्वारः तुल्यलक्षणलक्षिताः।
तच्छन्दः शास्त्रतत्त्वज्ञाः समं वृत्तं प्रचक्षते।।

प्रश्नः १९— अर्धसमवृत्तस्य किं लक्षणम्?

उत्तरम्— प्रथमांघ्रिसमोयस्य तृतीयश्चरणो भवेत्।
द्वितीयस्तुर्धावद् वृत्तं तदर्धसममुच्यते।।

प्रश्नः २०— वर्णसमवृत्तस्य के भेदाः भवन्ति?

उत्तरम्— आरभ्यैकाक्षरात् पादादेकैकाक्षरवर्धितैः।
पृथक् छन्दो भवेत् पादैर्यावत् षड्विंशतिं गतम्।।

प्रश्नः २१— दण्डकस्य लक्षणं किम्?

उत्तरम्— षड्विंशत्यधिकाक्षरपादवन्ति छन्दांसि दण्डकाभिधेयानि भवन्ति।

प्रश्नः २२— गाथायाः किं लक्षणम्?

उत्तरम्— शेषं गाथास्त्रिभिः षड्भिः चरणैश्चोपलक्षिताः।

प्रश्नः २३— एकाक्षरादारभ्यषड्विंशत्यक्षरपर्यन्त पादानां छन्दसां काः संज्ञाः सन्ति?

उत्तरम्— (१) उक्ता, (२) अतयुक्ता, (३) मध्या, (४) प्रतिष्ठा, (५) सुप्रतिष्ठा, (६) गायत्री, (७) उष्णिक्, (८) अनुष्टुप्, (९) बृहती, (१०) पंक्तिः, (११) त्रिष्टुप्, (१२) जगती, (१३) अति जगती, (१४) शक्वरी, (१५) अतिशक्वरी, (१६) अष्टिः, (१७) अत्यष्टिः, (१८) धृति, (१९) अत्तिधृतिः, (२०) कृतिः, (२१) प्रकृतिः, (२२) आकृतिः, (२३) विकृतिः, (२४)संकृतिः, (२५) अतिकृतिः, (२६) उत्कृतिः इति।

प्रश्नः २४— आर्यायाः कति भेदाः भवन्ति?

उत्तरम्— पञ्च।

प्रश्नः २५— आर्यायाः के पञ्च भेदाः भवन्ति?

उत्तरम्— (१) पथ्या,(२) विपुलार्या, (३) चपला, (४) मुखचपला, (५) जघनचला च।

प्रश्नः २६— आर्यायाः पूवार्धे कति मात्राः भवन्ति?

उत्तरम्— त्रिंशत् मात्राः।

प्रश्नः २७— आर्यायाः पूर्वार्धे कति गणाः भवन्ति?

उत्तरम्— सप्तगणाः अन्ते च गुरुवर्णो भवति।

प्रश्नः २८— आर्यायाः पूर्वर्धे जगणविषये को नियमो वर्तते?

उत्तरम्— आर्यायाः पूवार्धस्य जगण विषये नियमोऽस्ति यत्—
विषम गणेष्वु जगणो नो भवेत्।

प्रश्नः २९— पथ्या आर्यायाः किं वैशिष्ट्यम्?

उत्तरम्— पथ्या आर्यायाः उभययोरपिदयोः प्रथम त्रिगणानामन्ते पादस्य समाप्तिर्भवति।

प्रश्नः ३०— विपुलार्यायाः किं लक्षणम्?

उत्तरम्— संलघ्य गणत्रयमादिमं शकलयोर्द्वयो भवति पादः।
यस्यास्तां पिंगलनागो विपुलामिति समाख्याति।।

प्रश्नः ३१– गीतेः किं लक्षणम्?

उत्तरम्– आर्या प्रथम दलोक्तं यदि कथमपि लक्षणं भवेदुभयोः।
उभयोः कृतयतिशोभां तां गीतिं गीतवान् भुजङ्गेशः।।

प्रश्नः ३२– किमुद्गीतेः लक्षणम्?

उत्तरम्– आर्याशकलद्वितयं व्यत्यय–रचितभवेद्यस्याम्।
सोद्गीतिः किल कथिता तद् व्यत्यशभेदसंयुक्ता।

प्रश्नः ३३– वृत्तरत्नाकरस्य वैतालीयप्रकरणे कीदृशानि छंदांसि वर्णितानि?

उत्तरम्– मात्रिकार्धसमानि।

प्रश्नः ३४– वैतालीयस्य किं लक्षणम्?

उत्तरम्– षड्विषमेऽष्टौ समे कलाः ताश्च समेस्युर्नो निरन्तराः।
न समाऽत्र पराश्रिता कलाः वैतालीयेऽन्तेरलौ गुरुः।।

प्रश्नः ३५– वैतालीय प्रकरणे वृत्तरत्नाकरकारेण कति छन्दांसि लक्षितानि?

उत्तरम्– अष्टौ।

प्रश्नः ३६– वैतालीय प्रकरणेवृत्तरत्नाकरकारेण कानि अष्टौ छन्दांसि वर्णितानि?

उत्तरम्– (१) औपच्छन्दसिकम्, (२) आपातलिका, (३) दक्षिणान्तिका, (४) उदीच्यवृत्तिः, (५) प्राच्यवृत्तिः, (६) प्रवृत्तकम्, (७) अपरान्तिका, (८) चारुहासिनी च।

प्रश्नः ३७– केदारभट्टः अनुष्टुप् प्रकरणे कति छन्दांसि वर्णितवान्?

उत्तरम्– दश।

प्रश्नः ३८– वृत्तरत्नाकरकारेण कानि छन्दांसि अनुष्टुप् प्रकरणे वर्णितानि?

उत्तरम्– (१) वक्त्रमद्य्, (२) पथ्यावक्त्रम्, (३) विपरीतपथ्यावक्त्रम्, (४) चपलावक्त्रम्, (५) युग्मविपुला, (६) विपुला, (७) भविपुला, (८) रविपुला, (९) नविपुला, (१०) तविपुला च।

प्रश्नः ३९– वक्त्रछन्दसः किं लक्षणम्?

उत्तरम्– वक्त्रं नाद्यान्नसौ स्यातामब्धेयोऽनुष्टुभिख्यातम्।

प्रश्नः ४०– अनुष्टुप् प्रकरणे वर्णितानां छन्दसां पादा कति अक्षराणां भवन्ति?

उत्तरम्– अष्टाक्षराणाम्।

प्रश्नः ४१– अनुष्टुपः अन्यन्नाम किम्?

उत्तरम्– श्लोक इति।

प्रश्नः ४२— मात्रिकसमप्रकरणे केषां छन्दसां समावेश चकार वृत्तरत्नाकरकारः?

उत्तरम्— निम्नांकितानां छन्दसां समावेशोऽस्तिऽस्मिन् प्रकरणे—

(१) अचलोधृतिः, (२) मात्रासमकम्,(३) विश्लोकः, (४) चित्रा, (५) उपचित्रा (६) पादाकुलकं च।

प्रश्नः ४३— अचल धृतेः किं लक्षणम्?

उत्तरम्— द्विकगुणित वसुलघुरचलधृतिरिति।

प्रश्नः ४४— अचलधृतौ प्रतिपादं कति मात्राः भवन्ति?

उत्तरम्— षोडशमात्राः।

प्रश्नः ४५— अचल धृतौ कीदृशाः वर्णाः भवन्ति प्रतिपादम्?

उत्तरम्— ह्रस्ववर्णाः।

प्रश्नः ४६— तृतीयेऽध्याये कीदृशानि छन्दांसिवर्णितानि सन्ति?

उत्तरम्— वर्णसमवृत्तानि।

प्रश्नः ४७— मध्याछन्दसः कति भेदाः भवन्ति?

उत्तरम्— दौ भेदौ।

प्रश्नः ४८— कौ तौ मध्यायाः भेदौ स्तः?

उत्तरम्— नारी मृगी च।

प्रश्नः ४९— मध्यायाः छन्दसोः कतिवर्णाः भवन्ति?

उत्तरम्— त्रयो वर्णाः।

प्रश्नः ५०— गायत्री छन्दसः कति भेदाः भवन्ति के च ते?

उत्तरम्— गायत्र्याः चत्वारो भेदाः भवन्ति— (१) तनुमध्या, (२) शशिवदना, (३) विद्युल्लेखा, (४) वसुमती च।

प्रश्नः ५१— शशिवदनायाः किं लक्षणम्?

उत्तरम्— शशिवदना न्यौ।

प्रश्नः ५२— विद्युल्लेखायाः किं लक्षणम्?

उत्तरम्— विद्युल्लेखा मोमः।

प्रश्नः ५३— गायत्री छन्दसः भेदेषु कति अक्षराणि भवन्ति?

उत्तरम्— षडक्षराणि।

प्रश्नः ५४— अनुष्टुप् छन्दसः कति भेदाः भवन्ति?

उत्तरम्— सप्त।

प्रश्नः ५५— विद्युन्माला छन्दसः किम् लक्षणम्?

उत्तरम्— मो मो गो गो विद्युन्माला।

प्रश्नः ५६— अनुष्टुप् छन्दसो भेदेषु प्रतिपाद काति अक्षराणि भवन्ति?

उत्तरम्— अष्टौ।

प्रश्नः ५७— अनुष्टुप् छन्दसः के भेदाः भवन्ति?

उत्तरम्— (१) चित्रपदा, (२) विद्युन्माला, (३) माणवकम्, (४) हंसरुतम्, (५) समानिकम्, (६) प्रमाणिकम्, (७) वितानम् च।

प्रश्नः ५८— त्रिष्टुप् छन्दसः कति भेदाः भवन्ति?

उत्तरम्— षोडशभेदाः।

प्रश्नः ५९— त्रिष्टुप् छन्दसः के भेदाः सन्ति?

उत्तरम्— (१) इन्द्रवजाः, (२) उपेन्द्रवज्रा, (३) उपजद्याति, (४) सुमुखी, (५) दोधकम्, (६) शालिनी, (७) गतोमी, (८) श्रीः, (९) भ्रमरविलासितम्, (१०) रथोद्धता, (११) स्वागता, (१२) वृत्ता, (१३) भद्रिका, (१४) श्येनिकास, (१५) मौक्तिकमाला, (१६) उपस्थितम्।

प्रश्नः ६०— इन्द्रवज्रायाः किं लक्षणम्?

उत्तरम्— स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।

प्रश्नः ६१— उपेन्द्रवज्रायाः किं लक्षणम्?

उत्तरम्— उपेन्द्रवज्रा जगजास्ततो गौ।

प्रश्नः ६२— त्रिष्टुप् छन्दसः भेदानाम् प्रतिपादं कति अक्षराणि भवन्ति?

उत्तरम्— एकादशाक्षराणि।



मनोरमा-रत्नविमर्शः । केशवदेव तिवारी । (१-२ भाग)
महाभाष्यनवाह्निकीयालोचनम् । (नवाह्निक-प्रश्नोत्तरी) विजयमित्र शास्त्री
मालविकाग्निमित्र-रहस्यम् । डॉ. बालगोविन्द झा
मीमांसापरिभाषा सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
मुक्तावली-प्रकाश । (न्यायसिद्धान्तमुक्तावली-प्रश्नो.) राजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी
मुद्राराक्षस-विवेकः । लोकमणि दाहाल
मृच्छकटिक-सोपानम् । डॉ. नरेश झा
मेघदूत-तत्वालोकः । अशोकचन्द्र गौड़ शास्त्री
रघुवंश-रहस्यम् । रामप्रसाद त्रिपाठी । १-३ सर्ग, ६-७ सर्ग, १३-१४ सर्ग
रत्नावलीनाटिका सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
रसगङ्गाधर-सारः । डॉ. नरेश झा
लघुशब्देन्दुशेखर-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
लघुसिद्धान्तकौमुदी-चन्द्रिका । आचार्य विजयमित्र शास्त्री
वक्रोक्तिजीवित-दीपिका । डॉ. नरेश झा
वाक्यपदीय-प्रकाशिका । (ब्रह्मकाण्ड) । डॉ. सुरेशचन्द्र शर्मा
वासवदत्ता-रहस्यम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
वेणीसंहार-रहस्यम् । पं. परमेश्वरदीन पाण्डेय
वेदान्तपरिभाषा-सौरभम् । आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी
वेदान्तसार-प्रदीपः । श्री राजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी
वैदिकसाहित्येतिहास-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
वैयाकरणभूषणसार-दीपिका । श्री रामकिशोर त्रिपाठी
वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी-चन्द्रिका । शास्त्री एवं त्रिपाठी । (१-४ खण्ड) सम्पूर्ण
वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा-रहस्यम् । स्वामी रामेश्वर पुरी
वृत्तरत्नाकर-दीपिका । पं. वेदव्यास शुक्ल
व्यक्तिविवेकप्रश्नोत्तरीः । (१-२ विमर्श) कोठ्यारी एवं द्विवेदी
व्याकरणशास्त्रस्येतिहासः । डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
शाकुन्तल-रहस्यम् । त्रिलोकीनाथ द्विवेदी
शिवराजविजय-दीपिका । पं. वेदव्यास शुक्ल । प्रथम विराम
शिशुपालवध-रहस्यम् । श्री अशोकचन्द्र गौड़ शास्त्री । १-४ सर्ग
संस्कृतसाहित्येतिहास-कुञ्जिका । आचार्य परमानन्द शास्त्री
सांख्यकारिकादर्शः । राजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी
साहित्यदर्पणालोकः । रामजीलाल शर्मा । (१-६ परि.; ७-१० परि.) सम्पूर्ण
साहित्यशास्त्रीयोनिबन्धेतिहासः । वेदव्यास शुक्ल ।
सिन्धुवादवृत्त-रहस्यम् । डॉ कृष्णदेव प्रसाद
स्वरवैदिकी-प्रकाशः । डॉ. बालगोविन्द झा

भारतवर्ष के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों
(सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी;
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली;
जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, पुरी;
अवधेशप्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा;
पूर्वाञ्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर;
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर इत्यादि)

एवं

समस्त संस्कृत शिक्षा-संस्थानों (माध्यमिक संस्कृत बोर्ड इत्यादि) के परीक्षा पाठ्य-क्रम में निर्धारित पाठ्य-पुस्तकें एवं प्रश्नोत्तरियाँ निम्न स्थानों पर उपलब्ध हैं—